मेरी हजामत



लेखक

श्रीयुत अन्नपूर्णानन्द



१९=६

प्रथम बार २०००

मूल्य ॥=)

प्रकाशक—
बलदेव मित्रमण्डल
आलिपादेवी
काशी

मुद्रक—
श्री अपूर्वकृष्ण बोस,
इण्डियन प्रेस, लिमिटेड,
बनारस-ब्रांच

प्रिय बड़े भाई

श्रद्धेय श्री सम्पूर्णानन्दजी

को

सादर समर्पित

आवश्यक निवेदन

प्रस्तुत पुस्तक मेरी तीन कहानियों का संग्रह है जो समय-समय पर धारावाहिक रूप से प्रकाशित होती रही हैं। "ब्राह्मण-भोजन" मैंने केवल 'भोजन भट्ट' ब्राह्मणों को लक्ष्य करके लिखा था, ब्राह्मण जातिमात्र के प्रति मेरे ये भाव कदापि नहीं हैं। "मेरी हजामत" के एक परिच्छेद का कुछ दृश्य मैंने किसी अँगरेजी पत्रिका से लिया है, जिसे पढे मुझे बहुत दिन हो गये हैं और जिसका नाम भी मुझे अब याद नहीं है। "बडा दिन" में मैंने भूलकर भी किसी पर व्यक्तिगत आक्षेप नहीं किया है—यह दूसरी बात है कि 'चोर की दाढी में तिनका' वाली कहावत के अनुसार कुछ लोग इसे अपने ही पर लागू समझ लें।

साहित्यिक खुर्दबीन की मदद लेने पर प्रस्तुत पुस्तक में अनेक दोषाणु दीख पडेंगे, जिनके लिये मैं सहृदय पाठकों से क्षमाप्रार्थी हूँ।

जालिपादेवी काशी
१० चैत्र १९८८

अन्नपूर्णानन्द

प्रकाशक के दो शब्द

"सीता-ग्रन्थ-माला" का यह प्रथम पुष्प पाठकों की सेवा में अर्पित करते हमें अत्यन्त हर्ष हो रहा है। इसकी छपाई, सफाई में हमने अपनी ओर से कोई कसर नहीं रक्खी है—यद्यपि चमकीले चित्र देकर, चित्र द्वारा ही पुस्तक को महत्ता प्रदान करनेवाले पाठकों की अभिरुचि की तृप्ति का प्रयास भी हम न कर सके। व्यापारिक प्रतिस्पर्द्धा के इस युग में, सरस तथा स-ओज साहित्य के साथ ही यदि उसमें जनता की नवीन कामुकता की परितुष्टि का साधन न हो—तो वह 'बाजार' में नहीं चलती। किन्तु हम सुरस के साथ ही सुन्दर तथा शील-युक्त साहित्य ही माला में प्रकाशित करेंगे। आशा है, उदार पाठक हमें इस प्रयत्न मे अपनी सहायता द्वारा सफलता दिलायेंगे।

प्रस्तुत पुस्तक एक ऐसे लेखक की एक अनोखी हास्यरस-पूर्ण तीन गल्पों की गुटिका का समह है जिसने कुछ समय तक मृत 'भूत' तथा 'मतवाले' मे हलचल मचा रक्खा था। लेखक की रचना मे प्रधानता इस बात की है कि वह अधिकांशत मौलिक, स्वतन्त्र तथा प्रत्येक वाक्य में मार्मिकता भरी हुई है। आशा है हिन्दी ससार अवश्य इसका आदर करेगा—हम

आपकी दूसरी रचना भी शीघ्र ही प्रकाशित करेंगे। साथ ही, इस पुस्तिका के भूमिकालेखक महामना पं० पद्मसिंहजी शर्म्मा के आदेशानुसार स्वर्गीय श्री रुद्रदत्तजी की भी हास्यरस-पूर्ण रचनाओं का संग्रह प्रकाशित करने का विचार है।

अन्त में, हम प० पद्मसिंहजी शर्म्मा के अत्यन्त कृतज्ञ हैं कि आपने समयाभाव होने पर भी पुस्तक पर अपनी अमूल्य सम्मति देने का कष्ट किया।

विनीत

प्रकाशक

प्रस्तावना

हास्यरस को हँसी खेल समझकर कुछ लोगो ने आज कल इस गरीब की खासी छीछालेदर कर रक्खी है, असख्य स्वयम्भू कवियों की तरह हास्यरस के लेखकों की भी हिन्दी मे एक बाढ सी आ गई है। जो एक फ़िकरा भी सञ्जीदगी से चुस्त नहीं कर सकते वही यहाँ बीरबर और अकबर (बादशाह नहीं, कवि !) बनने का दम भरते हैं। यार लोगों ने 'मजाक़' को महज मजाक ही समझ लिया है, 'हास्य' की हँसी उडाई जा रही है, जराफ़त का मुँह चिढाया जा रहा है, नगी गालियों को व्यङ्ग का नाम दिया जाता है, सभ्यता की साडी फाडी जाती है, मजाक की आड मे पबलिक का मजाक़ बिगाड़ा जाता है, और नाम धरा जाता है 'हास्यरस' ! अद्भुत उपहास है। 'आतिश' ने किसी ऐसे ही मौक़े पर कहा होगा —

''लगे हो मुँह चिढाने देते देते गालियाँ साहब !

जवाँ बिगडी तो बिगडी थी ख़बर लीजो दहन बिगडा।'

हास्यरस की कला बडी कठिन है, किसी बिरले प्रतिभाशाली लेखक को ही इसमे सच्ची सफलता प्राप्त होती है, ध्वनि और व्यङ्ग की प्रधानता न हो फिर कहने का ढङ्ग चुभता चमत्कृत और अनूठा न हो तो हास्य में जान ही नहीं आती, भद्दा और भौंडा भडौआ होकर रह जाता है, हँसी मजाक का

सारा मजा ही किरकिरा हो जाता है। मजाक का मजा जब है कि जिससे मजाक किया जाय वह भी सुनकर तडप जाय—खिलखिलाकर हँस पड—न कि चिढकर मारने दौड़े। यानी जिसे 'बनाया जाय' वह 'बिगडे' नहीं, सुधर जाय।

परिहास उपदेश का बडा हृदयग्राही प्रकार है। जो काम कभी कभी लम्बे लेकचरो से नहीं होता वह एक चुभते हुए फिकरे से हो जाता है—जहाँ रोना धोना बेकार जाता है—बेदर्द सुननेवाले पर कुछ असर नहीं करता—वहाँ एक गुदगुदी करने-वाला लतीफा काम कर जाता है। महाकवि 'अकबर' की कविता इसका उदाहरण है, जराफत की चाशनी में डूबा हुआ अकबर का एक शेर सुनकर समझदार और सहृदय श्रोता लोट-पोट हो जाता है, मुँह से 'वाह' और दिल से 'आह' निकल पडती है। हास्यरस के उद्देश्य की वास्तविक व्याख्या अकबर ने इस शेर में की है —

"कहकहों की मश्क से मैंने निकाला अपना काम,
जब किसी ने कद्रे-आहो नालाओ जारी न की।"

रस में स्थायिता और प्रभाव होना आवश्यक है, क्षणिक और निरुद्देश्य मनोरञ्जन ही किसी भी रस के लेख का प्रयोजन न होना चाहिए।

जिसमें अस्वाभाविकता, उद्वेजकता, अनौचित्य और अश्ली लता हो वह 'हास्यरस' नहीं हो सकता और चाहे जो कुछ हो। अश्लीलता के विषय में एक भारी भ्रम फैला हुआ है। आज

कल प्राय. खुले शृङ्गार के वर्णन ही की गणना 'अश्लीलता' के दोष में की जाती है, पर यह भूल है। किसी विषय की—किसी रस की—चाहे कोई बात हो—जो अनुचित रीति से—भौंडे ढङ्ग से—भद्दी तरह से—कही जायगी, अश्लीलता की 'धारा' वहीं होकर बहने लगेगी—वहीं यह दफा आयद हो जायगी, हास्यरस इसका अपवाद नहीं हो सकता। कुछ लेखकों ने हास्य को इस दोष का—अश्लीलता का अपवाद समझ लिया है। उनके कानून में हास्य के नाम पर जो चाहे गुजरे—सारे खून माफ हैं। हास्य की आड में खुलेआम अश्लीलता का प्रचार हो रहा है, इस हम्माम (स्नानागार) में आकर सब नङ्गे हो जाते हैं। लोकरुचि भ्रष्ट हो रही है, कोई कहने सुननेवाला नहीं।

हिन्दी में मौलिक हास्यरस के आदर्श लेखकों का अभाव सा है। विशुद्ध हास्य की जो दो चार पुस्तकें—लोक-रहस्य—चौबे का चिट्ठा—गोलमाल आदि हैं, वह पराया माल है। 'मतवाले' की बहक में अलबत्ता कभी-कभी हास्य की सुन्दर छटा देखने को मिल जाती है। 'आर्यमित्र' के 'विनोद बिन्दु' भी कभी मजा दे जाते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक हास्यरस की तीन कहानियों का समह है, जो पत्रों में 'निखट्टू' के नाम से निकल चुकी हैं। 'निखट्टू जी' छिपे रुस्तम निकले। सुप्रसिद्ध देशभक्त और साहित्यसेवी श्रीयुत सम्पूर्णानन्दजी के अनुज श्रीअन्नपूर्णानन्द जी ही इन कहानियों के 'निखट्टू' हैं।

कहानियाँ बड़ी मजेदार हैं, पढ़ने में खूब जी लगता है, वर्णनशैली रोचक है, भाषा में जान है, जगह-जगह मनोभावों का सुन्दर विश्लेषण है, अस्वाभाविकता और उद्वेजकता का जो ऐसी कल्पित कहानियों मे प्राय आ जाती हैं, अभाव है, यद्यपि कहीं-कहीं अत्यल्प मात्रा में एकाध बात ऐसी आ गई है जो न होती तो अच्छा होता। "ब्राह्मण-भोजन" के उपसहार में—"बाम्हन का पेट आके जरा नाप दीजिए" खटकता है। "पेट-प्रधान जाति"—"ससार मे ईश्वर की माया के अतिरिक्त यदि और किसी चीज को अथाह कहे जाने का गौरव प्राप्त हो सकता है तो वह ब्राह्मण का पेट ही है" इत्यादि वाक्य जातिमात्र पर प्रत्यक्ष आक्रमण सा है, औचित्य की सीमा का अतिक्रमण है। भले ही लेखक ने भूख की झोंक मे लिख मारा हो, उनका अभिप्राय ऐसा न रहा हो, नीयत साफ हो, पर यह बात है खटकनेवाली जरूर।

एक बात और भी है। कहानियों मे बहुत से अँगरेजी वाक्य रोमन लिपि मे और अँगरेजी भाषा मे ज्यो के त्यो भाषान्तर के बिना दे दिये गये हैं। जो पाठक अँगरेजी नहीं जानते (और ऐसे बहुत हैं जो नहीं जानते) वह ऐसे मौके पर बेरों मे गुठलियाँ या अगूरों में निमौलियाँ मिली देखकर झल्ला उठते हैं, कथाप्रकरण का एक वाक्य भी पाठक की समझ मे न आवे तो रसविच्छेद होकर मजा किरकिरा हो जाता है। अँगरेजी के विद्वान् लेखक के लिए तो यह एक मामूली 'रोज-

मरीह' है पर अँगरेजी भाषानभिज्ञ पाठक की दृष्टि में तिल ओट पहाड है। खैर नजर से बचाने के लिए यह 'दोष-दिठौने' की चर्चा कर दी है।

'निरुद्ध' जी को अपने पहले ही प्रयास में अभिनन्दनीय सफलता प्राप्त हुई है, कहानियाँ बनावटी नाम से लिखी गई थीं, लेखक को शायद इनकी उपादेयता में स्वयं सन्देह था, पर—

"निगाहें कामिलों पर पड ही जाती हैं जमाने की।
कहीं छिपता है 'अकबर' फूल पत्तों मे निहाँ होकर।"

आखिर इस छिपे माल पर भी गुणज्ञ पारखी प्रकाशक की निगाह पड ही गई और ये मनोहर कहानियाँ पत्रो के पुराने फाइलों से निकलकर पुस्तक के नये रूप मे सबके सामने आ गई। इस गुणज्ञता के लिये प्रकाशक महोदय प्रशसा के पात्र हैं*।

मैं लेखक को ऐसी सुन्दर रचना के लिए बधाई देता हूँ—स्वागत करता हूँ और आशा करता हूँ ये कहानियाँ बडे चाव से पढी जायँगी, इनका प्रचार और आदर होगा।

गुरुकुल काँगडी
रामनवमी, १९८६

पद्मसिंह शर्मा

---

* कोई ऐसे ही उदार और गुणग्राहक प्रकाशक यदि स्वर्गीय सम्पादकाचार्य प० रुद्रदत्तजी के हास्यरस के अनूठे लेखों का संग्रह करके प्रकाशित कर दें तो क्या ही अच्छा हो, हिन्दी में एक चीज हो जाय। प० रुद्रदत्तजी हास्यरस के अद्वितीय लेखक थे, उनके पद्य तो बडे ही मार्के के और मार्मिक होते थे, पर वह सब पत्रों के पुराने चिथडों में ही छिपे पडे हैं।

प० सि० श०

ब्राह्मण-भोजन

[१]

सबेरे दतुअन कुल्ला से छुट्टी पाकर मैं माता के पास जलपान माँगने गया। वहाँ कोरा जवाब मिला कि आज जलपान नहीं मिल सकता। कारण पूछने पर विदित हुआ कि एक ब्राह्मण देवता को भोजन करने के लिये बुलाया गया है, जब तक वे भोजन न कर लेंगे तब तक घर के लोग अन्न-जल ग्रहण नहीं कर सकते। क्या करता, एक लम्बी साँस भरकर लौट आया और पित्त मारकर बैठ रहा।

ब्राह्मण-देव को दस बजे का समय दिया गया था पर मैं यह बख़ूबी जानता था कि बारह के पहिले उनका प्रेत भी न झाँक चलेगा। लोगों का ख्याल है कि ये पेट-प्रधान जाति है और निश्चित समय से घण्टे आधघण्टे पहले ही आ धमकते होंगे, पर ऐसा है नहीं। ये सदा दो-दो तीन-तीन घण्टे बाद आने की कृपा करते हैं।

इसका रहस्य यह है कि मध्याह्न के उपरान्त भोजन करने से इन लोगों को दो लाभ होते हैं। एक तो भूख ख़ूब कड़कड़ाकर लगी रहती है जिससे अधिक से अधिक खाद्य-

पदार्थों का सहार किया जा सकता है, दूसरे देर करके खाने से सन्ध्या या रात्रि में फिर अपने लिये भोजन के प्रबन्ध करने की चिन्ता नहीं रह जाती।

खैर, दस की कौन कहे ग्यारह भी बज गया और घड़ियाँ अब बारह बजने की धमकी देने लगीं पर पण्डितजी की परछाई ने अभी तक मेरा चौकठ नहीं पार किया। यहाँ चूहों ने बड़ी मुस्तैदी से पेट में डण्ड पेलना शुरू कर दिया।

रह-रहकर रसोई के घर से सुगन्ध की नदी उमड़ पड़ती थी। मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा कि मेरी नाक के पास कोई मँडरा-मँडराकर अठखेलियाँ कर रहा है। हम लोग जितने उस समय तक पेट-पट पर ताला लगाये बैठे थे, सभी की यही दशा थी। महाकवि गङ्ग का एक हस्तलिखित काव्य-ग्रन्थ मेरे हाथ लग गया है जिसे बालिग होने पर मैं निज व्यय से छपवाऊँगा—अभी मैं सिर्फ़ ३५ वर्ष का हूँ। उस ग्रन्थ के एक कवित्त का उत्तरार्द्ध मैं यहाँ उद्धृत किये देता हूँ।

पाक को परसि पौन गयो लै सुबास बाहर,
लागत ही औरे गति भई घर भर की।
बाल-वृद्ध-वनिता सबै की बुद्धि भोरी भई,
चित चलि गयो, पेट पुलक्यो, जीभ फरकी॥

ठीक यही दशा उस समय हम लोगों की थी। इस सुगन्ध ने सभी को बेचैन बना रक्खा था।

मैंने रसोई के दरवाजे पर कई फेरे लगाये पर कोई तार नहीं जमा। इतने में बारह का घण्टा बजा। आखिर न रहा गया। मैंने माता से पूछा कि क्या करना चाहिये, पण्डितजी तो नहीं आये और बारह बज गये। माता ने कहा करना क्या है, इन्तजार करो, आते ही होंगे। गोया अभी तक मैं इन्तजार नहीं कर रहा था, किसी हलवाई की दूकान में विहार कर रहा था।

सवा बारह—साढे बारह—एक—अब क्या करूँ, किसी करवट चैन नहीं मिलता। इन चूहों का बुरा हो, पहले सब पेट में सिर्फ डण्ड लगा रहे थे, अब सबों ने मिलकर Long Jump और High Jump की कसरत शुरू कर दी। मेरी प्यारी अम्मा को भी बैठे बैठाये अच्छा मजाक सूझा, ब्राह्मण-भोजन कराने क्या चलीं मेरे गले रोजा लेकर मढ दिया।

एक ओर तो भोजन का विरह सताये हुए है, दूसरी ओर माता की आज्ञा कि पण्डितजी का और इन्तजार करो। बड़ी मुसीबत में जान पडी हुई है।

डेढ बजने का वक्त हो आया पर पण्डितजी का कहीं गन्ध तक नहीं मिला। यहाँ पेट ने Ultimatum देना शुरू कर दिया। सोचने लगा कि क्या करूँ कि समय कट जाय। एक बार इरादा हुआ कि कोई उपन्यास पढ़ूँ पर तबीयत नहीं बढी। कहाँ तो पेट ने सबेरे से सन्यास ले लिया है और कहाँ मैं उपन्यास पढने बैठूँ। तब क्या करूँ? ताश, शतरञ्ज, गञ्जीफा सबमें कुछ न कुछ दिमाग लडाने की जरूरत होती है पर भूख

ने यह हाल कर रक्खा है कि इस समय किसी औरत से आँख लडाने की भी ताब नहीं है, दिमाग कहाँ से लडाऊँ ? कोई ऐसा काम सोचना चाहिये जो भूखे पेट पर बिना दिमाग लगाये किया जा सके।

आहा ! अच्छा याद आया, लगे हाथ कुछ साहित्यसेवा क्यो न कर डालूँ ! यह तो खास भूखे पेट पर करने की चीज ही है और इसमें भला दिमाग की कौन जरूरत ? बहुत से काम ससार मे ऐसे हैं जो बिना दिमाग के नहीं हो सकते जैसे भग घोटना, बटेर लडाना, कबड्डी खेलना, सडक पीटना, मशाल दिखाना, रेकना वगैर पर साहित्यसेवा के लिये दिमाग् की जरूरत है यह मैंने चौरासी लाख योनि भ्रमण करने पर भी आज तक नहीं सुना। अगर आपने ऐसी कोई वात सुनी है तो फौरन नीम की पत्ती मँगाइये और पानी मे उबाल-कर उसी पानी से कान धो डालिये।

अब रह गयी मेरी यह उक्ति कि भूखे पेट पर ही घनी-घोरी साहित्यसेवा हो सकती है। इसे मान लेने मे तो शायद किसी को भी कोई आनाकानी न हो। सीधी बात है

मैं अब एक वाक्य लिखता हूँ, जिसे आप ध्यानपूर्वक उकहूँ बैठकर पढ़िये—इसलिये कि शायद बीच में कोंसने की जरूरत पड़ जाय—

"न जाने कितने सोंडे मनुष्य साहित्य के घोड़े पर भूस के कोड़े की मदद से दौड़े और जो सड़क पर रोड़े बटोरते फिरते थे थोड़े समय में रुपयों के तोड़े बटोरने लगे।"

क्या ही सुन्दर वाक्य है! जान पड़ता है कि बड़े दिन के उपलक्ष में किसी राजभक्त रायबहादुर ने कलक्टर साहब के पास अनुप्रास की डाली लगाकर भेजी है। मैं तो भाई, सच फरमाता हूँ मुझे यह वाक्य बहुत ही जँचा। इस वाक्य का ठीक-ठीक अर्थ क्या है यह मैं कभी फुरसत के वक्त सोचूँगा, अभी तो मैंने सिर्फ लिख मारा है और इसे लिखते ही मेरी आत्म-गरिमा बाँसों ऊपर उछल गयी है। छिद्रान्वेषी चाहे जो कहें पर मैं यह जानता हूँ कि महाकवि पद्माकर यदि बजाय हिन्दू के मुसलमान होते और बजाय जलाये जाने के दफन किये गये होते और फिर यदि उनकी कब्र में करवट मारने की काफी जगह होती तो वे इस अनुप्रासमय वाक्य की सुन्दरता पर मुग्ध होकर करवट बदल देते। कोई इस वाक्य को प० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी के कानों तक पहुँचा दे तो मुझे विश्वास है कि वे 'अनुप्रास का अन्वेषण' करना भूल जायँ।

जो हो, मैंने निश्चय कर लिया कि जब तक ब्राह्मण देवता नहीं आते तब तक समय बिताने के लिये साहित्यसेवा ही

करना उपयुक्त होगा। एक ही Phenomenon का भिन्न भिन्न लोगों पर क्या मानसिक प्रभाव पड़ता है यह मनोविज्ञान का बडा महत्त्वपूर्ण और मजेदार विषय है। यह सब जानते हैं कि भूख भारत की सम्पदा है। इसी भूख के कारण भिन्न-भिन्न प्रकृति के भारतवासियों के हृदय मे कैसे कैसे भ्रान्त करुणिक भाव-विकार उत्पन्न होते हैं—उनका समुच्चय हिन्दी साहित्य के लिये एक नयी चीज़ होगी। यह सोचकर मैंने अपने घर भर को—गुरुजनों को छोडकर—नौकर-चाकर सहित बुलवा भेजा। सबको इकट्ठा करके मैंने कहा—"इस समय तुम लोग सभी भूख की पीडा से व्यथित हो। इसके सम्बन्ध में तुम लोगों के हृदय मे नाना प्रकार के भाव उत्पन्न होते होंगे। उन भावों को तुम लोग थोडे से थोडे शब्दों मे व्यक्त करते जाओ। मैं नोट करता जाता हूँ।" इस पर एक धृष्ट बालक ने कहा कि आप हृदय के भावों की तहकीक़ात कर रहे हैं, पर मेरे तो सब भाव इस समय पेट ही में उत्पन्न हो रहे हैं, हृदय मे नहीं। मैंने उसे डाँटकर चुप कराया और एक-एक से अलग-अलग पूछना शुरू किया। जो उत्तर मिले उन्हें मैं नीचे दिये देता हूँ।

छोटे भाई ने कहा—"मुझे ऐसा जान पडता है कि मेरे पेट मे ज्वालामुखी पर्वत फूट पडा है।"

दूसरे छोटे भाई ने कहा—"मुझे ऐसा जान पडता है कि पेट में चौरीचौरा काण्ड का अभिनय हो रहा है।"

छोटी बहिन ने कहा—"मुझे ऐसा जान पड़ता है कि पेट में भठियारिनों की सभा हो रही है।"

भतीजे ने कहा—"मुझे ऐसा जान पड़ता है कि मेरा पेट मानों तप्त रेगिस्तान है जिसमें रह-रहकर सिमूम का अन्धड़ बह रहा है।"

मजदूरिन ने कहा—"हमके ऐसन बुझात है कि जैसे कौनों चुडइल पेटे मे हुबुआत है।"

नौकर ने कहा—"हमके निरफुलै ऐसन बुझात है कि पेटवा में जैसे कौनो घसियारिन खुरपी चलावत होय।"

दूसरे नौकर ने कहा—"हम्में तो ऐसन जनात है कि जैसे कौनों मिला पेटे में बर्रै क छत्ता खोद दिहे होयँ।"

ड्योढीदार ने कहा—"हमका तो साहब ऐसा समुझ परत है कि देहियाँ के बिचपटे में कौनों सरवा डिगरीदार कुडकी कराय रहा है।"

ये तो हुए मेरे घर के आदमी और नौकर चाकर। इनके अलाव भाई साहब ने दो विद्यार्थी पाल रक्खे हैं जो मेरे यहाँ पड़े रहते हैं, खाना-कपड़ा पाते हैं और आज तेरह चार सत्रह वर्ष से लघुसिद्धान्तकौमुदी को मथ रहे हैं। इनसे भी मैंने वही प्रश्न किया जो सबसे किया था।

पहिले विद्यार्थी ने कहा—"मुझे तो ऐसा भास रहा है कि मानों मेरे उदरगह्वर मे निराकार ब्रह्म आसन जमा रहे हैं।"

दूसरे विद्यार्थी ने कहा—"मुझको तो ऐसा प्रतीत हो रहा है कि प्रलय को निकट समझकर भगवान् शंकर मेरे पेट में ताण्डव नृत्य का अभ्यास कर रहे हैं।"

देखा आपने, जितने आदमी उतनी राय। मैं इन सब सम्मतियों से सहमत हूँ, इनमें और मेरे निजी 'उदरगत' भावों मे बहुत कुछ सादृश्य है। भूख क्या वस्तु है इसको जान लेना हम भारतवासियो के लिये नितान्त आवश्यक है। भारत एक ऐसा देश है जहाँ के किसान दिन में एक बार आधे पेट खाने पर भी भूखे बने रहते हैं—यह उनकी शरारत नहीं तो क्या है! कौन कहता है कि आधे पेट खायँ? एक तो खुद अपने देश में इतना अन्न पैदा होता है और दूसरे विलायत से हरसाल हजारों जहाज गेहूँ और गन्ना और चावल और चना और मुश्क और हिना और रोहू और पोला और मिन्नी और पिन्नी और खिन्नी और गिलट की चवन्नी भर-भरकर आते हैं। अभी परसाल की बात है कि अकेले मैनचेस्टर ने सौ कम निन्नानबे जहाज कलाकन्द और गोल-गप्पे से लादकर भेजे थे। गरज यह कि इतना अन्न जो देश में पैदा होता है और जो विलायत से आता है वह क्या हो जाता है? एक अँगरेज विद्वान् का कहना है कि भारत-वासियों की दरिद्रता का मुख्य कारण यह है कि वे कीमती चीजों को जमीन में गाड़ रखते हैं और मरते वक्त बताना भूल जाते हैं कि कहाँ गड़ी हैं। इसी कारण से कीमती

चीजों का देश से लोप होता जा रहा है और दरिद्रता बढती जा रही है।

एक उदाहरण लीजिये। एक मक्खीचूस ने भाई-बन्द से छिपा कर दो कनस्टर घी जमीन में कई पोरसे के नीचे गाड दिया कि गाढ़े-सँकरे काम आवेगा। थोड़े दिनो के बाद वह बीमार पडा। डाक्टरो ने उसकी जबान खींच-कर और छाती में घूँसा मारकर और पेट में अँगुली कोच कर Examine किया। वैद्यों ने उसकी कलाई में कच्चा सूत बाँधकर आध मील के फासले से उसकी नाड़ी की परीक्षा ली, हकीमो ने उसके पसीने को कारूरे की शीशी मे भरकर मर्ज की तशखीश की और अन्त मे सभों ने सर्व-सम्मति से यह प्रस्ताव पास किया कि इसे मौत की बीमारी हो गयी है और अब यह बचेगा नहीं। आखिर ऐसा ही हुआ भी। परमात्मा का यह अटल नियम है कि सन्तों की, महात्माओं की, सती स्त्रियो की और डाक्टर-वैद्यों की बात कभी झूठी नहीं पडने पाती।

उसके मर जाने पर घरवालों को यह फिक्र हुई कि उसके पास जो दो कनस्टर घी था वह क्या हो गया। ऊपर-नीचे सब जगह लोगों ने तलाश कर मारा और अन्त मे यह स्थिर किया कि अगर जमीन के ऊपर नहीं मिलता है तो जमीन के भीतर खोजना चाहिये। बस खोदाई शुरू हो गयी और धीरे-धीरे करके सारा मकान खोद डाला गया। आखिर

बहुत खोदने पर घी के दोनों कनस्टर मिल गये। तब क्या था, देखते-देखते घरवाले मालामाल हो गये, नया मकान बन गया, दास दासी—नालकी पालकी—जोड़ी टमटम—रसगुल्ला चमचम—घोड़ी कोतल—रण्डी बोतल—गरज़ यह कि अमीरी का सभी सामान इकट्ठा हो गया।

इतना और कह देना चाहता हूँ कि उपर्युक्त वार्ता सवा सोलह आने सच है—और अगर सच नहीं है तो आज से पचास वर्ष बाद सच हो जायगी, जब घी रेडियम के मोल बिकने लगेगा।

[२]

डेढ बज गया पर ब्राह्मण देवता अभी तक नहीं पधारे। अब वास्तव मे भूख की समस्या बड़ी जटिल हो गयी थी। हम लोग बाहर बैठके मे लेटे हुए अपनी-अपनी साँस अगोर रहे थे। मेरा भतीजा धीमे स्वर से 'नमो सकठा कष्ट-हरनी भवानी' का पाठ कर रहा था। पहिले विद्यार्थी ने दूसरे विद्यार्थी से कहा कि जरा देखना, मेरी नाडी चल रही है या नहीं? मेरा सबसे छोटा भाई गमले के पास बैठकर तुलसी का पेड चर रहा था। सामने कुएँ पर एक मजदूर को सत्तू सानते देख मैं 'चाह भरी, आह भरी और वाह भरी' निगाहों से उसकी ओर निहारने लगा।

कुछ लोगों का ख्याल है कि जब पेट की पोटरी खाली हो जाती है तो पेट और पीठ आपस मे सटने लगते हैं, और तब

उनकी रगड से जो चिनगारियाँ पैदा होती हैं उन्हीं चिनगारियों का नाम भूख है। इन डपोरसङ्खों से पूछना चाहिये कि अगर चिनगारियो का नाम भूख है तो मेरे पेट मे जो लङ्कादहन हो रहा है उसका क्या नाम है? उर्दू के एक अगडधत्त कवि ने मेरे पास कुछ शेर लिख भेजे हैं जो इस तरह हैं—

आंख निकली, पेट पचका, मुँह खुला, निकली जबान।
क्या धजा हो जाती है, भूखे से पूछा चाहिये॥
भूख हो जब पेट में खाने की खुशबू नाक मे।
मुँह में पानी के मजे को मुँह से पूछा चाहिये॥
पूरी-तरकारी दही-शक्कर वो मूली और अचार।
खाने की मेकदार मरभुक्खे से पूछा चाहिये॥
जब न गेहूँ हो तो भूसा ही गनीमत जानकर।
चट्ट करने का मजा आँतों से पूछा चाहिये॥
पेट गों गों बोलता है जब बहुत लगती है भूख।
इसकी हालत तो मियाँ 'चोंघट' से पूछा चाहिये॥

कहा जाता है कि विपत्ति के समय राम नाम को सुमिरना चाहिये। मैंने ऐसा ही किया पर कई बार 'हे राम' के बदले 'हाय भूख' मुँह से निकल गया। मेरी हालत तो ऐसी अबतर हो गयी थी कि यदि इस समय भगवान् बुद्ध एक मुट्ठी में चना और दूसरी मुट्ठी में निर्वाण लेकर मेरे सामने आते तो मैं बडे असमञ्जस में पड जाता कि क्या लूँ और क्या

छोड दूँ। खुद ही सोचिये कि कहाँ मैं दस बजे खाना खाकर साढे दस से साढे तीन तक थोडा सो रहता था और कहाँ आज पौने दो का वक्त हो गया, पेट पर टाटी दिये बैठा हूँ और मुँह मे मक्खियाँ आ जा रही हैं। मेरी इच्छा हुई कि माता से कहला भेजूँ कि या तो कुछ खाना मेरे लिये भेज दीजिये, और अगर यह न कर सकिये तो थोडा सा तुलसी सोना मेरे मुँह मे डाल जाइये।

मुझे रह-रहकर यह फिक्र सताती थी कि आखिर यह पण्डित हो क्या गया? कहीं रास्ते मे महामाई तो नहीं भिड गयीं, या पृथ्वी माता तो नहीं निगल गयीं। किसी राँड़ न फाँस तो नहीं लिया, किसी साँड ने सींग तो नहीं मार दिया, किसी सीढी से गिर तो नही पडा, किसी सन्यासी ने चेला तो नहीं मूड लिया, आखिर अब तक आया क्यों नहीं? मुझे यह भी सन्देह हुआ कि उसे मोटा-ताजा देखकर कहीं मिरच के टापूवाले तो नहीं पकड ले गये।

मेरा धैर्य जो भूख की आँच मे कभी पिघल चुका था, अब हर एक साँस के साथ भाप बनकर उडने लगा। पास ही मेरा छोटा भाई पेट पर एक तकिया रखकर लेटा हुआ था। अगर यह मेरा भाई न होता तो मैं खुलेआम कहता कि अपनी शैतानी मे यह शैतान का भाई है। मैं समझ रहा था कि लेटे-लेटे वह कोई शैतानी सोच रहा है। मेरा अनुमान ठीक ही निकला। एकाएक उसके वदन मे एक बिजली सी दौड

गयी, वह उठ बैठा और मुझसे बोला—"भैया, चलिये हम लोग सब मिलकर रसोईंघर में डाका डालें।"

गो मैं उसका बड़ा था और मुझे चाहिये था कि उसको ऐसी बात कहने पर डाँटता पर मैं आपके कान में कहता हूँ कि उसकी राय मेरे दिल में इस तरह धँस गयी जैसे कीचड़ में ढेला। तब भी कुछ देर तक अपने बड़प्पन की लाज निबाहने के लिये मैंने उससे कहा—"नहीं-नहीं, डाका डालना उचित नहीं होगा।"

उसने पूछा—"क्यो? उचित क्यो नहीं होगा? अपने घर में डाका डालते हैं, किसी दूसरे के घर में तो डालते नहीं हैं। और सो भी अपने सारे घर में तो डाका डालते नहीं हैं, सिर्फ रसोई के घर में डालते हैं।"

मैंने कहा—"हाँ, यह तो ठीक है पर तब भी मैं समझता हूँ कि डाका डालना अनुचित ही होगा।"

"यही तो पूछता हूँ कि क्यों अनुचित होगा? मेरी राय में तो डाका डालना ही इस समय हम लोगों का एकमात्र धर्म्म है।"

"वह कैसे?"

"सब धर्म्मों का दादा है आपद्धर्म्म। रसोईंघर में डाका डालना इस समय हम लोगो का आपद्धर्म्म हो गया है।"

बात तो यार इसने पते की कही। भूल के नाम पर डाका डालना अनुचित होता पर आपद्धर्म्म के नाम पर डाका डालने में

छोड़ दूँ। खुद ही सोचिये कि कहाँ मैं दस बजे खाना खाकर साढे दस से साढे तीन तक थोड़ा सो रहता था और कहाँ आज पौने दो का वक्त हो गया, पेट पर टाटी दिये बैठा हूँ और मुँह मे मक्खियाँ आ जा रही हैं। मेरी इच्छा हुई कि माता से कहला भेजूँ कि या तो कुछ खाना मेरे लिये भेज दीजिये, और अगर यह न कर सकिये तो थोड़ा सा तुलसी सोना मेरे मुँह मे डाल जाइये।

मुझे रह-रहकर यह फिक्र सताती थी कि आखिर यह पण्डित हो क्या गया? कहीं रास्ते मे महामाई तो नहीं भिड़ गयी, या पृथ्वी माता तो नहीं निगल गयीं। किसी राँड ने फाँस तो नहीं लिया, किसी साँड ने सींग तो नहीं मार दिया, किसी सीढी से गिर तो नहीं पडा, किसी सन्यासी ने चेला तो नहीं मूड लिया, आखिर अब तक आया क्यो नहीं? मुझे यह भी सन्देह हुआ कि उसे मोटा-ताजा देखकर कहीं मिरच के टापूवाले तो नहीं पकड ले गये।

मेरा धैर्य जो भूख की आँच मे कभी पिघल चुका था, अब हरएक साँस के साथ भाप बनकर उडने लगा। पास ही मेरा छोटा भाई पेट पर एक तकिया रखकर लेटा हुआ था। अगर यह मेरा भाई न होता तो मैं खुलेआम कहता कि अपनी शैतानी मे यह शैतान का भाई है। मैं समझ रहा था कि लेटे-लेटे वह कोई शैतानी सोच रहा है। मेरा अनुमान ठीक ही निकला। एकाएक उसके बदन में एक बिजली सी दौड़

गयी, वह उठ बैठा और मुझसे बोला—"भैया, चलिये हम लोग सब मिलकर रसोईघर में डाका डालें।"

गो मैं उसका बडा था और मुझे चाहिये था कि उसको ऐसी बात कहने पर डाँटता पर मैं आपके कान मे कहता हूँ कि उसकी राय मेरे दिल मे इस तरह धँस गयी जैसे कीचड में ढेला। तब भी कुछ देर तक अपने बडप्पन की लाज निबाहने के लिये मैंने उससे कहा—"नहीं-नहीं, डाका डालना उचित नहीं होगा।"

उसने पूछा—"क्यो? उचित क्यो नहीं होगा? अपने घर में डाका डालते हैं, किसी दूसरे के घर में तो डालते नहीं हैं। और सो भी अपने सारे घर मे तो डाका डालते नहीं हैं, सिर्फ रसोई के घर में डालते हैं।"

मैंने कहा—"हाँ, यह तो ठीक है पर तब भी मैं समझता हूँ कि डाका डालना अनुचित ही होगा।"

"वही तो पूछता हूँ कि क्यों अनुचित होगा? मेरी राय मे तो डाका डालना ही इस समय हम लोगों का एकमात्र धर्म्म है।"

"वह कैसे?"

"सब धर्म्मों का दादा है आपद्धर्म्म। रसोईघर में डाका डालना इस समय हम लोगो का आपद्धर्म्म हो गया है।"

बात तो यार इसने पते की कही। भूख के नाम पर डाका डालना अनुचित होता पर आपद्धर्म्म के नाम पर डाका डालने में

तो कोई बुराई नहीं थी। आपद्धर्म्म साधारण चीज नहीं है। इसकी उपयोगिता मैं अपने हृदय के रेशे-रेशे से मानता हूँ। जरा आप भी सोचिये कि आपद्धर्म्म से कितने काम निकलते हैं। मान लीजिये शाम के वक्त आप बन-ठनकर दालमण्डी की पश्च-कोशी करने के लिये निकले और एक पान की दूकान पर खडे होकर अपना हृदय टटोलने लगे कि चम्पा के कोठे पर चढें कि चमेली के। इतने ही मे आपके पिताजी के परम मित्र बा० टकटोर सिंह कहीं से टपक पडे और आपसे पूछ बैठे कि यहाँ क्या कर रहे हो? अब इस समय आपका यह आपद्धर्म्म होगा कि सच-झूठ का ख्याल छोड़कर जवाब दे कि "मैं यहाँ आ गया हूँ कुछ पतलून के बटन खरीदने।"

आपकी गाय बूढी हो गयी है, दूध नहीं देती और उसे बैठाकर खिलाने में आपका दिवाला खसक रहा है तो यह आपका आपद्धर्म्म है कि उसे कसाई के हाथ बेच डालिये। स्वराजिष्ट मेम्बर अगर बजट पास न करते हों तो लाट साहब का आपद्धर्म्म है कि अपने विशेषाधिकार के प्रयोग से खर्चा चलावें। आप हिन्दू हैं और मुसलमान मारने को चढ आये हैं तो आपका यह आपद्धर्म्म है कि आप दर्वाजा बन्द करके बैठ रहें। आप धुवाँ धक्कड से प्रेम रखते हैं, सिगरेट पी रहे हैं, इतने में बडे भाई साहब आ जायँ तो यह आपका आपद्धर्म्म है कि जलते हुए सिगरेट को अपने कोट की जेब में गिरा दे। आप ससुराल गये हैं, ससुराल की आवहवा जरूरत से ज्याद

अच्छी है, खाना फौरन हजम हो जाता है और भूख हर वक्त लगी रहती है तो यह आपका आपद्धर्म्म है कि थोड़ा चना भुनाकर मकान से लेते जायँ और जब ससुरालवाले सो जायँ तो भर-भर मूठी गले के नीचे उतारें। जाड़े का दिन है, सवेरा हो गया है, बिस्तरा छोड़ने से उत्तरी ध्रुव का अनुभव होता है तो यह आपका आपद्धर्म्म है कि रजाई खींचकर, समेटकर, लपेटकर और आँख बन्दकर यह सोचें कि अभी सवेरा नहीं हुआ है। आप गाहे-माहे मुँह का मजा बदलते हैं, बोतल में सोमरस लिये जा रहे हैं और कोई पूछ बैठे कि क्या लिये जा रहे हो तो यह आपका आपद्धर्म्म है कि कह दें कि अर्क पोदीना लिये जा रहा हूँ। आप अँधेरी सीढ़ी पर मजदूरिन को चूमाचाटी के पैतरे दिखला रहे हैं और बीवी आ जाय तो यह आपका आपद्धर्म्म है कि .. ..खैर अब कहाँ तक लिखूँ, इतने दृष्टान्त दे डाले कि आपकी अक्ल मेरी अक्ल की तरह यदि पत्थर और लकड़ी के सयोग से भी बनी हो तब भी आप समझ जायँगे कि आपद्धर्म क्या चीज है।

मैंने छोटे भाई से कहा—"अच्छा, यदि आपद्धर्म्म के नाम से रसोई घर में डाका डालना चाहते हो तो मुझे ऐसी कोई आपत्ति नहीं है, मैं भी साथ चलूँगा और कुछ मदद भी करूँगा पर एक यही ख्याल है कि ब्राह्मण बेचारा आवेगा तो ”

छोटे भाई ने निहायत खुशतमीजी के साथ मेरी बात काटकर कहा—"अरे अब भी आप इस ब्राह्मण को बेचारा

कह रहे हैं। दो वजा, यमराज हम लोगों के लिये अपने दूतों को कभी रवाना कर चुके पर यह ब्राह्मण अभी तक नहीं आया। ऐसे ब्राह्मण वेचारे को चारे-चारे के लिये तरसा-कर मारना चाहिये। और अगर आपको इन बातों का ऐसा ज्याद ख्याल है तो किसी दूसरे मौके पर एक के वदले चार ब्राह्मण खिला दीजियेगा।"

"लेकिन इधर ऐसा कोई मौका भी तो नहीं पडनेवाला है।"

"क्यो, अभी तो दो-एक महीने मे आपकी वरसी पडने-वाली है।"

"मेरी वरसी पडनेवाली है ?"

"जी हाँ ! मैंने ऐसा ही सुना है।"

"अबे नालायक, मैं तो जीता जागता हूँ, मेरी वरसी अभी कैसे पडेगी ?"

"आप भले ही जीते-जागते हों पर मैंने अम्मा से सुना है कि वैसाख मे आपकी वरसी पडेगी और हर साल पडती है।"

"धत्तेरे वेवकूफ की। अवे वरसी नहीं, वर्षगाँठ, वर्ष-गाँठ। वर्षगाँठ को वरसी कहता है। वैसाख में मेरी वर्ष-गाँठ पडती है।"

"Oh ! I see, खैर तभी ब्राह्मण-देवता को खिला दीजियेगा।"

"क्यों नहीं, साल में सिर्फ एक ही तो मेरी वर्षगाँठ पडती है सो उस दिन भी ब्राह्मण देवता को निमन्त्रित करके आज को तरह अपनी जान जोखिम में डालूँ।"

"अच्छा खैर और किसी दिन। अभी तो आपको जल्दी ही लडका होनेवाला है, तब खिला दीजियेगा।"

"मुझे तो नहीं लडका होनेवाला है, तुम्हारी छोटी भाभी को अलबत्ता होनेवाला है।"

"आप तो बाल की खाल खींचते हैं। एक ही बात है, चाहे आपको हुआ चाहे भाभी को हुआ। हाँ तो लडका होगा न ?"

"जरूर ही होगा। जब पेट मे आया है तो साला कहाँ जायगा।"

"एँ, आप अपने बच्चे को साला कहते हैं।"

"तो क्या बुरा करता हूँ। हिन्दुस्तान मे ७५ सैकडे बाप ऐसे हैं जो अपने बेटों को दुलार मे या क्रोध मे साला कहते हैं। अगर किसी हिन्दुस्तानी के बारे मे जानना चाहते हो कि वह पढा-लिखा है या नहीं तो उसके सामने उसके बेटे को खडा कर दो। अगर वह अपने बेटे को साला कहकर सम्बोधित करे तो जानो कि पढा-लिखा शख्स है, और अगर सरवा कहे तो जानो कि अपढ गँवार है। इसलिये यदि मैंने अपने बच्चे को साला कह दिया तो क्या उसकी देह में कहीं लासा लग गया? अपने देश की एक अच्छी प्रथा मैं क्यों छोड दूँ ?"

छोटे भाई ने कहा—"अच्छा खैर, जब लडका होगा तो उसी की तेरही पर एक ब्राह्मण खिला दीजियेगा।"

"अजी कैसी तेरही ?"

"वही जो छठी के बाद होती है।"

"अरे पागल, वह बरही कही जाती है, तेरही नहीं।"

आजकल की पढ़ाई का यही दोष है। लड़के किताबी विद्या खूब जान जाते हैं पर नित्य के जीवन की साधारण से साधारण बातों तक से अनभिज्ञ रहते हैं।

मेरा छोटा भाई मुझसे मजाक नहीं कर रहा था, वह वास्तव मे नहीं जानता था कि बर्षी और वर्षगाँठ में, बरही और तेरही में कितना भयङ्कर भेद है।

अन्त में यही निश्चय रहा कि हम लोग फौरन चलकर रसोई के घर मे डाका डाले। मारे भूख के दम धँसता जा रहा था पर हम लोग किसी न किसी तरह बैठके के बाहर आये और सीढ़ी चढने लगे। सबको यही धुन थी कि देखे डाके में कौन कौन सी खाने की चीजें हाथ लगती हैं, सुना था कि ब्राह्मण-देवता के लिये कई तरह की मिठाइयाँ भी मँगायी गयी थी।

[३]

हम लोग दबे पाव सीढ़ी चढने लगे। मैं ही इस लूट पार्टी का नेता चुना गया था, इस लिये सबके आगे-आगे मैं चल रहा था।

भूख की कमजोरी से मेरे पैरों को काँपते हुए देख मेरे छोटे भाई को सन्देह हुआ कि मैं डर रहा हूँ। उसने मुझसे

पूछा कि आप डर रहे हैं क्या ? मुझे उसके इस प्रश्न पर बड़ी हँसी आयी। भला रसोईघर में डाँका डालने में कौन खतरा था कि मैं डरता, वहाँ सिवाय स्त्रियों के और रहता ही कौन है। किसी मर्द का सामना तो था नहीं। मैंने अपनी मूछों पर हाथ फेरते हुए कहा— 'क्यों रे बेवकूफ, मैं औरतों से डरूँगा ? तूने मुझे क्या समझ रक्खा है ? मैं—और डरूँ औरतों से। सबेरे मन्दिरों में दर्शन करने जाता हूँ तो सैकड़ों स्त्रियों की भीड़ रहती है और मैं सबको धक्का देता हुआ निकल जाता हूँ किसी भी स्त्री की हिम्मत नहीं पड़ती कि चूँ तक करे। इतना तपाक रखता हूँ तब अपने को मर्द कहता हूँ।" मेरी इस स्पीच ने सब पर मेरा सिक्का जमा दिया और सब मुझे सम्भ्रम की दृष्टि से देखने लगे।

ज्यों-ज्यों हम लोग सीढ़ी खतम करते जाते थे त्यों-त्यों हम लोगों की हिम्मत बढ़ती जाती थी—पर हाय ! ऊपर पहुँचकर हम लोगों ने जो कुछ देखा उससे हम लोगों की सारी आशा का एकाएक गर्भस्राव हो गया। देखा कि रसोई के दरवाजे पर पहरा बैठ गया है। एक ओर रसोईदारिन और दूसरी ओर मजदूरिन खड़ी है, एक के हाथ में करछुल और दूसरे के हाथ में चिमटा है। यह दृश्य देखकर मेरी मर्दानगी दो बराबर-बराबर हिस्सों में विभक्त हो गयी, एक हिस्सा आकाश में विलीन हो गया और दूसरा पाताल में धँस गया।

"अजी कैसी तेरही ?"

"वही जो छठी के बाद होती है।"

"अरे पागल, वह बरही कही जाती है, तेरही नहीं।"

आजकल की पढाई का यही दोष है। लडके किताबी विद्या खूब जान जाते हैं पर नित्य के जीवन की साधारण से साधारण बातों तक से अनभिज्ञ रहते हैं।

मेरा छोटा भाई मुझसे मजाक नहीं कर रहा था, वह वास्तव मे नहीं जानता था कि बर्षी और वर्षगाँठ में, बरही और तेरहों मे कितना भयङ्कर भेद है।

अन्त मे यही निश्चय रहा कि हम लोग फ़ौरन चलकर रसोई के घर मे डाका डाले। मारे भूख के दम धँसता जा रहा था पर हम लोग किसी न किसी तरह बैठके के बाहर आये और सीढी चढने लगे। सबको यही धुन थी कि देखें डाके मे कौन कौन सी खाने की चीजें हाथ लगती हैं, सुना था कि ब्राह्मण-देवता के लिये कई तरह की मिठाइया भी मँगायी गयी थीं।

[२]

हम लोग दबे पाव सीढो चढने लगे। मैं ही इस लूट पार्टी का नेता चुना गया था इस लिये सबके आगे-आगे मैं चल रहा था भूख की कमजोरी से मेरे पैरों को काँपते हुए देख मेरे छोटे भाई को सन्देह हुआ कि मैं डर रहा हूँ। उसने मुझसे

पूछा कि आप डर रहे हैं क्या ? मुझे उसके इस प्रश्न पर बड़ी हँसी आयी। भला रसोईघर में डाँका डालने में कौन खतरा था कि मैं डरता, वहाँ सिवाय स्त्रियों के और रहता ही कौन है। किसी मर्द का सामना तो था नहीं। मैंने अपनी मूछों पर हाथ फेरते हुए कहा— 'क्यों रे बेवकूफ, मैं औरतों से डरूँगा ? तूने मुझे क्या समझ रक्खा है ? मैं—और डरूँ औरतों से। सबेरे मन्दिरों में दर्शन करने जाता हूँ तो सैकड़ों स्त्रियों की भीड़ रहती है और मैं सबको धक्का देता हुआ निकल जाता हूँ किसी भी स्त्री की हिम्मत नहीं पड़ती कि चूँ तक करे। इतना तपाक रखता हूँ तब अपने को मर्द कहता हूँ।" मेरी इस स्पीच ने सब पर मेरा सिक्का जमा दिया और सब मुझे सम्भ्रम की दृष्टि से देखने लगे।

ज्यों-ज्यों हम लोग सीढ़ी खतम करते जाते थे त्यों-त्यों हम लोगों की हिम्मत बढ़ती जाती थी—पर हाय ! ऊपर पहुँचकर हम लोगों ने जो कुछ देखा उससे हम लोगों की सारी आशा का एकाएक गर्भस्राव हो गया। देखा कि रसोई के दरवाजे पर पहरा बैठ गया है। एक ओर रसोईदारिन और दूसरी ओर मजदूरिन खड़ी है, एक के हाथ में करछुल और दूसरे के हाथ में चिमटा है। यह दृश्य देखकर मेरी मर्दानगी दो बराबर-बराबर हिस्सों में विभक्त हो गयी, एक हिस्सा आकाश में विलीन हो गया और दूसरा पाताल में धँस गया।

मैंने अब अच्छी तरह जान लिया है कि हमारे देश में राजनैतिक षड्यन्त्र क्यों नहीं सफल होते। षड्यन्त्र रचते समय सर्कार का एक प्रतिनिधि भेदिये के रूप में जरूर साथ ले लिया जाता है। यही दशा हम लोगों की भी हुई। मेरा भतीजा यह देखने के लिये पहिले ही से ऊपर भेज दिया गया था कि मैदान साफ है या नहीं। उसने माता के कानों में सारी भुगतान लगा दी, फलत रसोई के दरवाजे पर पहरा बैठ गया और उसे चार आने पैसे इनाम मिले जिनकी बाजार से मिठाइयाँ मँगाकर वह कूद-कूदकर और हम लोगों को दिखा-दिखाकर खा रहा था।

मैंने छोटे भाई की ओर देखा और उसने मेरी ओर देखा। मैं पीछे खसकने लगा और वह मुझे आगे ढकेलने लगा। उसने कहा—"चलिये, चलिये, आगे बढ़िये, अब आये हैं तो कुछ लूट ले चले, दस ही पाँच कचौरियाँ ज्याद नहीं तो, एक-एक गाल मारने को तो हो जायगा।"

मैंने कहा—"हाँ हाँ, चलो चलो, आगे बढ़ो, मैं पीछे-पीछे आता हूँ।"

"आप बड़े हैं, आप ही को आगे चलना चाहिये।"

"अजी, ऐसे मामलों में मैं निहायत छोटा हूँ, तुम्हीं आगे-आगे चलो।"

"पर आपके रहते हुए मेरा आगे बढ़ना उचित नहीं होगा। दुनिया मुझे हँसेगी।"

"दुनिया की ऐसी-तैसी, मैं खुशी से इजाजत देता हूँ कि तुम आगे बढो। बल्कि मेरे चलने की जरूरत भी नहीं है, मैं यहाँ से खडे-खडे तुम्हे सलाह दूँगा और उत्साहित करूँगा। तुम जाओ, रसोई मे पिल पड़ो और काफी सामान लूट लाओ। हो सके तो एक अथरी दही भी उठाते आना, बैठके मे बैठकर सडपा जायगा।"

"यह सब झोल है। खुद तो आप डर रहे हैं, मुझे आगे झोंक रहे हैं। आप तो कह रहे थे कि मैं औरतों से डरता ही नहीं, सो अब क्यो डर रहे हैं?"

"तुम समझते तो हो नहीं। मैं उन औरतों से नहीं डर रहा हूँ जो रसोई के द्वार पर खडी हैं, लेकिन उनके हाथ में जो करछुल और चिमटा है उनसे भला कौन मर्द-बच्चा न डरेगा?"

अन्त में बात यही पक्की रही कि न मैं आगे बढा और न मेरा छोटा भाई। सिर्फ हिम्मत का टोटा था जिसकी वजह से सारा गुड गोइँठा हो गया।

जब आदमी आगे न बढेगा तो ख्वाहमख्वाह पीछे हटेगा। इसी लिये हम लोगों ने पीछे खसकना शुरू किया और खसकते-खसकते फिर बैठके में लौट आये। प्राणरचा का एक उपाय सोचा गया था, वह भी 'दक्खिन' में मिल गया।

भूख ने अब गजब ढाना शुरू किया। खोपडी में धनुष्टङ्कार सा होने लगा, हाथ पैर में सनसनाहट पैदा हो गयी,

पेट में गोलाबारी शुरू हो गयी और दिमाग के फुसडे-फुसडे अलग होने लगे। हालत और खराब होने की सम्भावना देखकर मैंने सोचा कि कोई ऐसी दवा मँगाकर खा लूँ जिससे ये आसार दब जायँ। इसलिये मैंने नौकर को आवाज दी—"अरे लवेदुआ, यहाँ आ।" उसके आने पर मैंने उससे कहा—"जरा डाक्टर ईश्वरसहाय के यहाँ जा और—" उसने पूछा कि कौन डा० ईश्वर सहाय? मैंने कहा—"वही जो दाढ़ी रक्खे हुए हैं।" इस पर मेरा छोटा भाई बोल उठा—"दाढी रक्खे नहीं हैं बल्कि रख रहे हैं, यों कहिये।"

"नहीं-नहीं दाढी रक्खे हुए हैं।"

"जी नहीं, दाढ़ी रख रहे हैं।"

"मत फजूल बको, वे दाढी रक्खे हुए हैं।"

"नहीं भाई साहब, वे अभी दाढो रख रहे हैं।"

"अच्छा, दाढी रक्खे हुए हैं और दाढी रख रहे हैं मे क्या फर्क है?"

छोटे भाई ने कहा—"सुनिये, दाढी रक्खे हुए हैं का अर्थ यह हुआ कि दाढी रख चुके हैं और बराबर रक्खे रहेंगे तो दो एक वर्ष में एक अच्छी, खासी, लम्बी और घनी दाढी हो जायगी। और दाढी रख रहे हैं का अर्थ यह हुआ कि दाढी रखना शुरू कर दिया है और बीवी के हाथों से बचाये रहेंगे तो बढती जायगी और पकने पर बिल्कुल सन

की, अथवा सनकी, ऐसी हो जायगी। देखा आपने दोनो के अर्थों मे अन्तर है न?"

"मेरा 'जरजर' पेट मुझे मना करता है कि इस समय इन बारीकियों के समझने मे मैं अपना दिमाग खर्च करूँ। पर इतना कहूँगा कि हो तुम सख्त बदतमीज। इतने जरा से मतभेद के लिये मेरी बात क्यो काट दी?"

"वाह साहब वाह! हम और आप देश और कांग्रेस से बढकर हैं क्या? दाढी रक्खे हुए हैं और रख रहे हैं में तो तब भी बडा फर्क है, इससे छोटी-छोटी बातों पर कांग्रेस में और देश में और नेताओं में डण्डे चल पडते हैं। अभी दो ही तीन महीने की बात है कि किसी सभा में यह तय हो रहा था कि कितने गज सूत हर एक कांग्रेस का मेम्बर प्रति मास कातकर दिया करे। एक पार्टी २००० गज के पक्ष मे थी, दूसरी पार्टी १९९९ गज के पक्ष में थी। बस इतनी ही बात पर आपस में जो-जो जूते चले कि उतने जूते अगर मुझे ख्वाब मे लगे तो मेरी चाँद साफ हो जाय।"

"खैर जो कुछ भी हो पर यह तय है कि तुम हो बडे बेहूदे। मैं अब भी कहूँगा कि डाक्टर ईश्वरसहाय दाढी रक्खे हुए हैं।"

"कभी नहीं! हरगिज नहीं!! मैं मान नहीं सकता!!! वे दाढी रख रहे हैं।"

मुझे गुस्सा आ गया, मैंने बगल में रक्खी हुई शीशे की दावात उठाकर फर्श पर दे पटकी और गरजकर बोला—

लोग ऊपर क्यों गुट बाँधकर तशरीफ ले गये थे ?" मैंने कहा "जी, देखने गया था कि पण्डितजी के आने का समय हो ही गया है खाने वाने का इन्तजाम सब ठीक है या नहीं।" भाई साहब ने फिर पूछा—"तो ऊपर क्या देखा आपने ?" मैंने कहा—"जी, मैंने यही देखा कि रसोई के द्वार पर महराजिन हाथ मे कफ्छुल लिये खडी हैं। इससे मैंने यह नतीजा निकाला कि सब इन्तजाम ठीक है, सिर्फ पण्डितजी के आने की देर है।"

खैर, भाई साहब गये। जब तक वे खडे थे, मैं मारे डर के दोनो फेफडों मे एक साथ साँस नहीं ले सकता था।

अभी तक लबेदुआ खडा ही था, उसने अब मुझसे पूछा—"हाँ तो डाक्टर साहब से का जायके कहब ?"

मेरी तबीयत बिलकुल झुँझला उठी थी। जीने की इच्छा अब बिल्कुल जाती रही। इसलिये मैंने इस ख्याल को दिल से दूर कर दिया कि अपने लिये उनसे कोई दवा मगाऊँ। पण्डितजी के जल्दी आने की निराशा ने और भूख की पीड़ा ने कुछ दूसरा ही भाव हृदय में पैदा कर दिया।

मैंने लबेदुआ से कहा—"तू डाक्टर साहब के यहाँ जा और उनसे कह कि आपके दवाखाने मे जितने तरह के जहर हों सबमें से थोडा थोडा बतौर बानगी के दे दे, जो पसन्द होगा रख लिया जायगा और बाकी लौटा दिये जायँगे। सुराफ पूछ लेना कि भूख से तीन-चौथाई मरे हुए आदमी को

वाको एक चौथाई मरने के लिये कितना काफी होगा। जल्दी पूछकर आना।"

इसके बाद मैंने छोटे भाई से कहा—"जाकर अपनी छोटी भाभी से कह दो कि अगर सती होना चाहती हो तो जल्दी सबसे बिदा लेकर नीचे आवे।"

इतना कहकर मैं लेट गया और आँख बन्द करके अनुभव करने लगा कि दम कैसे निकलता है। मैं अपनी समझ मे उस देश की सैर कर रहा था जहाँ जीवन और मृत्यु का सङ्गम होता है।

मैं वैतरणी में गोता लगाने के लिये कपडे उतार ही रहा था कि बाहर से 'बम शकर' की आवाज आयी और पण्डितजी के खुर की टाप चौतरे पर सुनाई पडी।

पण्डितजी को देखकर हम लोगों को जो खुशी हुई उसे सी० आइ० डी० के दारोगा लोग भी नहीं वर्णन कर सकते—हम आप क्या वर्णन करेंगे जो महा साधारण जीव हैं।

उनके आने की खबर घर मे बिजली की तरह फैल गयी। सभी को अतीव प्रसन्नता हुई। मेरी स्त्री ने बाद को मुझसे अकेले में कहा कि मारे खुशी के उसकी अँगिया छ टूक हो गई थी।

और मैं अपना हाल क्या लिखूँ। बस यही समझिये कि मारे खुशी के मैं दुम हिलाने लगा।

पण्डितजी को देखकर हम लोगों को जो खुशी हुई उसे वर्णन करने की इच्छा करूँ तो मफलता के लिये पहिले देवी सरस्वती के व्रत का अनुष्ठान करना होगा और अब व्रत का नाम सुनकर मैं मर्माहत हो उठता हूँ। मुझे तो ऐसा प्रतीत हुआ कि जीवन का टिमटिमाता हुआ दीपक फिर से जगमगा उठा। सबके मुर्झाये हुए चेहरों पर एक नई आभा सी झलकने लगी। अपने शुभागमन में इतनी प्रसन्नता का स्रोत बहते देखकर पण्डितजी स्वयं भी अत्यन्त आह्लादित हुए।

पण्डितजी का संक्षिप्त परिचय यहाँ पर दे देना उचित होगा। इनका नाम है जङ्गम चौबे, जो इनके लिये बिल्कुल अनुपयुक्त है क्योंकि जङ्गम महराज जब खाने के लिये बैठ जाते हैं तो सोलहो आने स्थावर हो जाते हैं। इनको खिलाने से चार ब्राह्मण खिलाने का फल होता है, क्योंकि ये करीब-क़रीब उतना ही खाते हैं जितना चार साधारण ब्राह्मण या आठ साधारण मनुष्य खा सकते हैं। जब ये खड़े होते हैं तो इनकी तोंद दो कदम आगे बढ़कर खड़ी होती है और चलते हैं तो दो कदम आगे आगे चलती है। बगल में एक विहङ्गम सी झोली ये सदा लटकाये रहते हैं जिसमें पोथी, पत्रा, रोरी, जनेऊ, अबीर, बुक्का, चन्दन, तिल, धूपबत्ती, दियासलाई, गोमुखी, रामरज, कुशा, नारा, पंचपात्र, आचमनी, सत्य-नारायण की बटिया, भंग की पुड़िया, सुरती, चूना, सुँघनी

और बहुत सी और अलाय-बलाय भरे रहते हैं, लेकिन अगर कोई पूछ बैठता है कि पण्डितजी, झोली में क्या रक्खे हो, तो झट कहते हैं कि "राजा ! इस झोली में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष भरा है, और का है।"

पण्डितजी अकेले नहीं थे, उनके साथ एक पूँछ भी थे। मेरे पूछने पर कि ये कौन हैं पण्डितजी ने उनका परिचय इन शब्दों में दिया—"भैया, इनके हमरे कुछ भेवहा लागत है, ई गाँव से आय पड़े रहे, हम कहा कि कहाँ चूल्हा सुलगइहैं, जजमान कै दरबार बना रहै, इहौ पूड़ी-कचौड़ी के घाट उतरि जैहै, हमका सुचित से बैठाय के खियाय दिहौ, इनका परोसा देके बिदा करौ।"

मैंने पण्डितजी से पूछा—"महाराज, इतनी देर क्यों लगायी, अब ढाई बजने चाहता है।"

जङ्गम महाराज ने बैठते-बैठते कहा—"भय्या ! देर तो सच्चौ होय गयी, आपो लोगन के बड़ी तकलीफ भई, पर का करैं, ऐसे फेर मे फँस गये रहे कि कुछ कहै की बात नाहीं। एक ठो बूढ़ बङ्गाली मरै के अँटका रहा, हमके बोलाइस गऊ-दान देवै के। हम लपके लपके पहुँचे और सब सराजाम ठीक करावा कि इतने में एक बैद आय पड़ा और बुढ़वा के कौनो दवाई घोटाय दिहेस। आप कहे न पतिऐहो, बुढ़वा तौ फिर से आँख खोल दिहेस और लगा टुपुर टुपुर बोलै। हमके रस्ता बताइस कि महाराज, आप जाव, अब आज गऊदान न

देव। हमके तौ भैया, ई उमेद पावत है कि ई जैानं दयू कै सँवारल वैद आवा है कि बुढवा के फिर से टपटेल कै देई। का कहीं, वदा की वात, ऐसीं नगद गऊ हाथ में आय के निकस गई। आखिर बुढवा एक दिन मरी जरूर पै आज नाहीं मरा। पण्डिताइन से हाक आये हई कि जात हैं तोहरे बदे गैया लियावै, देखीं अब उनका का जवाब देइत है।"

मैंने पण्डितजी को अपना पेट दिखाकर कहा—"महाराज, आप चिन्ता न करिये, गोदान देने की दशा मेरी भी हो चली है।"

"अरे राम राम राम, ई कौन भाखा वोलत हौ। भगवान करै आप सदा सोहागिन बने रहौ अरे भूल गयन, कहै क तातपरज ई कि सदा परसन्न बने रहौ। वरबसै गोदान क नॉव लेत हौ, हम लोगन के आगे अभी छोकरा हौ।"

"महाराज, छोकरा जरूर थे पर भूख ने सुखा के छुहारा बना डाला।"

"अच्छा बचा। अब ई सब वात राहे दो। भोजन की सामग्री सब परस्तुत होय तो शुभस्य शीघ्रम् करा जाय, बिलम्ब किये से कौन लाभ।"

इसके वाद जिस तत्परता से हम लोगो ने पण्डितजी को भोजन कराने का प्रवन्ध किया, वह दृश्य देखते ही बनता था। सबको यही धुन थी कि पण्डितजी जल्दी खाने बैठें, हम सभी पीढा-पानी रखने में जी-जान से जुट गये, पलक भाँजते सब

इन्तजाम हो गया, मैं दौड़कर पण्डितजी को अन्दर लिवा आया और छोटे भाई ने ख़ुद अपने हाथों से पण्डितजी के धूल-धूसरित पाद-पद्मों का प्रक्षालन किया।

पण्डितजी पालथी मारकर आसनी पर बैठ गये और उनके सामने थाली रख दी गयी। उन्होंने थाली पर एक तीव्र समालोचना की दृष्टि डाली और देखनेवालों को अनुमान हुआ कि जो कुछ देखा उससे सन्तुष्ट भी हुए, क्योंकि उनके चेहरे पर एक अपूर्व जुन्हाई सी छा गयी। मैंने कहा—"पण्डितजी अब लक्ष्मीनारायण करिये।" बस कहने की देर थी, हाथ की अँगुलियो ने थिरक-थिरककर थाली में नाचना शुरू किया और मुँह ने चपर-चपर से सुर भरना शुरू किया। कौर को तरकारी में लथेरने और फिर उसे गोलियाकर गाल में ठूसने के दृश्य कुछ अजीब कौतुक पैदा कर रहे थे। कभी-कभी किसी बड़े ग्रास को तर्जनी उँगली से गाल मे गुलेलते थे, और अगर कोई बहुत बड़ा ग्रास मुँह तक पहुँच गया तो उसे आधा काटकर खा लेते थे और आधा थाली मे रख देते थे। पहले आधे को खतम करके दूसरे आधे को भी उठाकर मुँह में रख लेते थे।

एक निवाले को दहिने गाल से बाये गाल मे खदेड़ते हुए पण्डितजी ने कहा—"बच्चा, थोरा रामरस तो देव।" मैंने थोड़ा सा नमक थाली में डाल दिया। थोड़ी देर के बाद पण्डितजी ने फिर कहा—"बच्चा, दस-पाँच ठो रामभँवरी तो देव।"

रामभँवरी ? यह किस चीज़ का नाम है ? मैंने तो यह नाम कभी नहीं सुना था। मैंने लवेदुआ को अलग बुलाकर धीरे से पूछा—"अबे, रामभँवरी किस चीज को कहते हैं, जानता है ?" उसने कहा—"साहब, हमें का मालूम कि रामभँवरी काव कहात है। जब आप पढ़ा-लिखा होय के नाहीं जानित तौ हम गँवार मनई का जानीं। आप तौ भला बी० ए० फेल हैं, हम तौ कुछहू नाहीं फेल हैं।" मैंने छोटे भाई से भी पूछा—"क्योजी, जानते हो रामभँवरी किसे कहते हैं ?" उस नालायक ने कुछ उत्तर तो दिया नहीं, उल्टे मुझे ताना देना शुरू किया—"मैं कहता था कि आप विशारद परीक्षा पास कर लीजिये, पर आपने मेरा कहा न माना। विशारद होते तो रामभँवरी शब्द के अर्थ जानते न होते।"

इसने अच्छा याद दिलाया। मेरे घर के बगल ही में एक विशारद रहते थे। मैं दौड़ा हुआ उनके यहा रामभँवरी का अर्थ पूछने गया। उन्होंने बताया कि रामभँवरी उस वस्तु को कहते हैं जिसके चारों ओर श्रीरामचन्द्रजी मोहित होकर भँवरी—अर्थात् चक्कर—लगावें। यह अर्थ मुझे ठीक नहीं जँचा, इसलिये मैंने उनसे कहा कि आपका बताया हुआ अर्थ कुछ गलत सा मालूम पड़ता है। मेरे मुख से इतनी बात सुनकर वे बड़े लाल-पीले हुए और कहने लगे—"मेरा बताया हुआ अर्थ यदि ठीक न होगा तो मैं हिन्दी भाषा की दुम में पलीता लगा दूँगा और अपनी मूँछों को चक्र सुदर्शन

से मुड़वा डालूँगा। चलिये, में आपके साथ चलता हूँ, मेरे सामने आप पण्डितजी से रामभँवरी का अर्थ पूछिये।"

मैं इनको साथ लेकर लौट आया और पण्डितजी से पूछा कि—"महाराज, आपने रामभँवरी मुझसे माँगी, पर मैं तो जानता ही नहीं कि रामभँवरी किसे कहते हैं। कृपा करके बताइये तो मैं ले आऊँ।" पण्डितजी ने मेरी अज्ञानता पर मुस्कराते हुए कहा—"देखो ई का थरिया मे रामभँवरी रक्खी है। रामभँवरी कहत हैं जलेबी को, समझे?"

मैंने अपने विशारद पड़ोसी से कहा—"देखा आपने, रामभँवरी माने जलेबी, और आप न जाने क्या अट-सट माने बता गये थे।"

उन्होंने कहा—"अजी यही तो मैंने भी बताया था, रामभँवरी उस वस्तु को कहते हैं जिस पर मोहित होकर श्रीरामचन्द्रजी जिसकी भँवरी लगावे, वा परिक्रमा करें। सिवाय जलेबी के, जो सुर-नर-मुनि सबको प्रिय है, ऐसी कौन सी चीज हो सकती है जो श्रीरामचन्द्रजी के मन को हर ले और जो उनसे अपनी परिक्रमा करावे? इसी लिये रामभँवरी के माने जलेबी है। इतनी साधारण बात भी न समझो तो तुमसे बढ़कर घनघोर घोंघा संसार में कोई न होगा।"

विशारदो के मुँह लगने से 'जीते कछु शोभा नहीं औ हारे निन्दा वाद' होता है। इसी लिये मैंने बात का बतङ्गड नहीं किया, चुप रह गया। पर जो कुछ भी हो मुझे एक

ऐसा नया शब्द मालूम हो गया जिसे बा० श्यामसुन्दरदासजी भी न जानते होंगे यद्यपि उन्हें डिक्शनरी लिखने और लिखाने का व्यसन सा होता जा रहा है। रामभँवरी माने जलेबी, राम भँवरी माने जलेबी, मैं घोखने लगा। रामरस माने नमक तो मैं जानता था पर रामभँवरी माने जलेबी आज मालूम हुआ। बाद को मुझे पता चला कि पण्डितों में इस तरह के और भी कई शब्द बरते जाते हैं जैसे—

रामलड्डू = मोतीचूर
रामचक्का = दही बड़ा
रामलकुटी = छड़ी
रामपनहीं = खड़ाऊँ
रामचरचा = भोजन
रामकटोरा = पुरवा (कुल्हड़)
रामघटघट = बूटी
रामफकी = सुरती चूना
रामठिकरा = पैसा
रामसलामी = दच्छिणा
रामकिचकिच = पूजा पाठ

इत्यादि। इन शब्दों को सुनकर ख्वाहमख्वाह यह चिन्ता हृदय में उत्पन्न होती है कि जैसे ये लोग जलेबी को रामभँवरी, पैसे को रामठिकरा, नमक को रामरस कहते हैं वैसे ही जजमान को कहीं रामजना न कहते हों।

खैर, थोड़ी देर बाद पण्डितजी ने कुछ जल-शोषण किया। मैंने समझा कि पानी पी रहे हैं तो अब पेट भर गया होगा। इसलिये मैंने बड़ी प्रसन्नता के साथ नौकर से पुकारकर कहा—"अरे लवेदुआ, पण्डितजी का हाथ धुला, पण्डितजी भोजन कर चुके।"

लेकिन ऐसा कहां। पण्डितजी मेरे ऊपर भ्रूभङ्ग करते हुए बोले—"भैया की बात! अरे अबहिं भोजन कर चुके। भोजन न हुआ खेलवाड़ हुआ। बच्चा, अकुताव मति, अबहीं तो—'

अट तर गयो, घट तर नाहीं।
बड़े भडार से, भेंटै नाहीं॥

यह सुनकर मेरा मुँह 'तोनडावत्' लटक गया और मैं भयभीत नेत्रों से पण्डितजी की मुखरूपी कन्दरा को निहारने लगा।

(५)

इसके बाद पण्डितजी ने बिल्कुल नये जोश के साथ थाली में हाथ भारना शुरू किया। चीजों के परसे जाने में और उनके लोप होने में स्यात् ही कुछ समय लगता रहा हो। मैंने सोचा कि अब पूछ पूछकर दूँ, नहीं तो शायद छूट जाय। इसलिये मैंने पूछा—"पण्डितजी, और कचौरी दूँ?" पण्डित-जी ने कहा—"देत चलौ बच्चा, जब अन्त करण तृप्त होइ

जायगा, तब मैं सुदै कादि दूँगा। न कादि मकूँगा तो इसारा करि दूँगा। अभी देत चलौ, हमार सिद्धा-अनन्त (सिद्धान्त) का है सो जानत हौ? सुनौ—

तू वेले जाव
हम ठेले जाइं
वेलना टूटै—
तव छूटै।
कि दयू छुड़ावैं—
तव छूटै॥

पण्डितजी तो छिपे रुस्तम निकले। पेट में चारा पड़ते ही 'निराला' छंद बनाने लगे।

इसके बाद पण्डितजी ने धोती का फेंटा ढीला किया और लगे कटोरा भर-भरकर दही सोरसने।

फिलासफी की उपयोगिता ऐसे ही समय साबित होती है। पेट तो दम-दिलासा की सीमा पार कर चुका था, मैंने मन को समझाया कि हे मन! जिसका आदि है उसका अन्त अवश्य ही होगा। जब पण्डितजी खाना शुरू कर चुके हैं तो कभी न कभी खतम करेंगे ही। पर मेरे मन ने मुझसे कहा कि ऐ मूर्ख! खतम तो करेंगे पर तेरी जिन्दगी मे खतम करेंगे या नहीं, सवाल तो यह है।

पण्डितजी ने अब 'सटीक' भोजन करना शुरू किया। खाते समय यदि खाने की चीजों की तारीफ करता चले तो

'भोजन-भट्ट' ब्राह्मणों की भाषा में वह 'सटीक' भोजन कहाता है। पण्डितजी बोले—"भोजन बडो चमत्कारपूर्ण बनो है बच्चा, सब चीज औव्वल है। रायता में सरसों की झार ऐसी सच्चो है कि सारी देह रोमाञ्चमान होय उठत है। और मिर्चे का अचार तो वर्णनातीत है।"

कुछ देर दिमाग घिसने पर मैंने समझा कि जिस मिर्चे के अचार की तिताई वर्णन के बाहर हो वह वर्णनातीत अचार कहाता है।

पण्डितजी फिर बोले—"पूरी ऐसी नाजुक बनी है कि माखन की गोली की नाईं गटई में सरक जात है। और कचौडी तो गजब है। ऐसी कपोलकल्पित कचौडी तो देवता लोगन के दुर्लभ है।"

मैंने बहुत देर तक माथापच्ची की पर कपोलकल्पित कचौडी का अर्थ किसी तरह नहीं समझ पाया। इसलिये मैंने पण्डितजी से बताने के लिये आग्रह किया। वे बोले—"जान पडत है कि आप लोग स्कूल में कोदो देके पढत हैं। बडे अचरज की बात है कि कपोलकल्पित कचौडी का अर्थ आप लोग नहीं जानित। कपोल माने गाल होत है न? बस, जौन कचौडी गाल के तरह फूली होय ऊ कपोलकल्पित कचौडी कहात है।"

मैं अपने ज्ञान के इस अभूतपूर्व इजाफे पर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। कविवर नाथूराम शकर शर्म्मा ने कहा है कि—

गोल गुदकारे कपोलों की कडी उपमा न दी।
पुलपुली मोयन पडी फूली कचौडी जान ली॥

यहाँ उपमान और उपमेय के स्थान बदल दीजिये तो कपोलकल्पित कचौडी का अर्थ स्पष्ट हो जाता है, क्योंकि कचौड़ी ऐसे गाल, या गाल ऐसी कचौडी, दोनो एकही बात हैं।

खैर, भूख ने अब बडा विकराल रूप धारण कर लिया था। मैंने सोचा कि पण्डितजी को किसी तरह इशारे से समझा देना चाहिये कि अब यदि बहुत जल्द आप खाने से मुँह न मोडेंगे तो हम लोगों के जान पर आ बनेगी। इसलिये मैंने पण्डितजी से पूछा—'क्यों महाराज! यह शरीर नौ द्वार का पींजरा है न ?"

"हाँ बच्चा, शास्तर मे तो ऐसने लिखा है।"

"अच्छा तो यह बताइये कि जब कोई भूख के कारण मरता है तो उसका प्राण किस द्वार से निकलता है? मालूम हो जाय तो उस द्वार की खास तरह से रखवारी करूँ।"

पर कौन किसे जवाब देता है। अरण्यरोदन का उत्तर प्रतिध्वनि से मिल भी जाता है लेकिन मेरे प्रश्न का उत्तर न मिला, न मिला, न मिला। यह मैं मानता हूँ कि एक तो मेरा प्रश्न बहुत टेढा था—स्वय आचार्य्य चरक को चक्कर मे डाल देता—और दूसरे पण्डितजी को उस समय जवाब देने की फुरसत भी नहीं थी, क्योंकि भोजन को पेट मे इस प्रकार तहियाना कि उसका कोई भी कोना कहीं से किसी तरह जरा भी खाली न छूट जाय आसान काम नहीं है।

आत्मरक्षा की दृष्टि से अब यह नितान्त आवश्यक हो गया था कि पण्डितजी को हमारी दयनीय अवस्था का वास्तविक ज्ञान करा दिया जाय। इसलिये मैंने एक थाली उठा ली और चम्मच से उसे बजाने लगा।

पण्डितजी ने पूछा—"ई काहे टनटन-टनटन कर रहे हो बच्चा।"

मैंने कहा—"पण्डितजी, मेरा प्राण कूच कर रहा है। उसी के कूच का डंका बजा रहा हूँ।"

गैंडे की पीठ पर सींक चुभाने का जितना असर होता है उससे कुछ कम ही असर पण्डितजी के हृदय पर मेरी इन बातों का हुआ। उनके जीमने की गति अभी रत्ती भर भी शिथिल नहीं हुई थी। दाहिना हाथ अब भी 'अप' और 'डाउन' ट्रेन की तरह थाली से मुँह और मुँह से थाली तक दौड़ रहा था। पण्डितजी हिमाचल की तरह अपने आसन पर अचल थे।

थोड़ी देर में उन्होंने कहा—' बच्चा, आज हम कुछ ढेर खायँगे।"

"ईश्वर करै आप इतना ढेर खाइये कि खाते-खाते ढेर हो जाइये।"

'नहीं बच्चा, हँसी मत करो। हम येह बदे आपके बताय दिहा कि जमें आप बजार से कौनो पाचक मँगाय रक्खैं, के जानै काम पड़ी जाय।"

यह एक रही। निमन्त्रित किये गये, खिला दिये गये अब खाना हजम करने का भी प्रबन्ध कर दीजिये। यह सब

मुझसे नहीं होने का। जो कुछ मैंने अभी तक किया वही बहुत है। जितनी देर मैंने भूख का सामना किया उतनी देर दुश्मन का सामना करने पर लोग Victoria Cross पा जाते हैं।

मैंने साफ़ कह दिया—"महाराज, बुरा मानिये या भला मैं पाचक-वाचक लाने नहीं जा सकता।"

"बजार कौन दूर है कि चार परग भुइयाँ के बदे इतनी आल्कत करत हौ, राम राम। पैदल न जाय सको तौ रामफिरकी पर जाय के लेत आवो।"

रामफिरकी कहते हैं बाइस्किल को। मैंने कहा—"महराज रामफिरकी नहीं उड़न-खटोलना भी हो तो मैं नहीं जाने का। मुझे इस समय अपनी जगह से हिलना अपाढ है।"

पण्डितजी बोले—"छि छि', जनम पाय के एक दिन कुछ देर भूखे रहना पड़ा तो माँझा ढीला होय गवा। एतनै देर मे सूख के अमहर होय गयो।"

मुझे यह बात कुछ लगती सी जान पड़ी। मैंने कहा—"खैर, मैं सूख के अमहर हो गया हूँ तो आपकी बला से, आप तो फूल के कटहर हो रहे हैं।"

"अच्छा बच्चा! मिजाज जिन बिगाड़ो, घर ही में कौनो पाचक होय तो मँगाय देव।"

'मेरे घर मे जमालगोटे की वर्फी है, कहिये कितना मँगा दूँ।"

पण्डितजी मुझे गम्भीर देखकर चुप हो गये। मैंने समझा कि पाचक न मिलेगा तो पण्डितजी खाने से मुँह मोड लेंगे। पर कहाँ की बात, पण्डितजी 'भोजन-पथ' पर अग्रसर होते ही चले गये। मुझे यह विकट चिन्ता होने लगी कि ब्राह्मण खाते-खाते कहीं प्राण न दे दे। इसलिये मैंने पण्डितजी से कहा—"महाराज, अब लगी-लिपटी से काम न चलेगा, आप साफ साफ कहिये कि अभी कितनी देर मे आपके पेट पर पटाक्षेप होगा।"

"ठहरौ भैया ठहरौ, अधीर काहे होत हौ, का सहजै मे पुण्य बटोर लेइहौ।"

"पुण्य तो जो कुछ इस जीवन में बटोरना था वह बटोर चुका, अब तो आपके साथ मरने के लिये तैयार हूँ—आप खुशी से खाते-खाते दम तोडिये।"

यह बात साफ जाहिर थी कि पण्डितजी न तो पराये अन्न पर दया करेंगे और न अपने पेट पर। दस मिनट जब दस बरस की तरह और बीत गये तब मैं फिर बोला—"कहिये महराज! अब कुछ पेट की थाह लगनी शुरू हुई या नहीं ?"

पण्डितजी ने उत्तर दिया—"बेटा, आप तौ वही बतिया बार-बार ओटत हौ। अबहीं कौन थाह बतावै, न तौ अबहीं चुन्दो खडी भई और न जौन थोडा बहुत खावा है ओके पहुँच की रसीद आई।"

मेरी हजामत

[१]

आपने सुना होगा कि कुछ लोग भाड झोंकने के लिये दिल्ली जाते हैं, कोयला ढोने के लिये कलकत्ते जाते हैं और बीडी बेचने के लिये बम्बई जाते हैं। मैं अपनी हजामत बनवाने लखनऊ गया था।

लखनऊ पहिले सिर्फ अवध की राजधानी थी, अब महात्मा बटलर की कृपा से सारे सयुक्त प्रान्त की राजधानी है। कई सुविधाओं का ख्याल करते हुए यह मानना पडता है कि राजधानी होने के योग्य यह है भी। पहिले तो रेवडियाँ अच्छी मिलती हैं जो आसानी से जेब मे भरकर कौंसिल-चेम्बर मे खायी जा सकती हैं, दूसरे नवाबजादियों का भाव सस्ता है जो बाहर से आये हुए कौंसिल के मेम्बरो को गृहस्थाश्रम बनाये रखने में मदद पहुँचाती हैं, तीसरे पार्कों की बहुतायत है जिनमे कौंसिल की ताती-ताती स्पीचो के बाद माथा ठडा करने की जगह मिल जाती है। तब भला बताइये कि इन सुभीतों के आगे इलाहाबाद को कौन पूछेगा? वहाँ सिवाय अक्षयवट के धरा ही क्या है? गवर्न्मेंण्ट की यह शर्त थी कि यदि

अक्षयवट का नाम बदलकर वटलर-वट रख दिया जाय तो इलाहाबाद को तलाक़ न दिया जाय, पर हिन्दुओं की धर्मान्धता के कारण ऐसा नहीं हो सका। हैली साहब के आने पर इलाहाबादियों ने उनके पास भी अपनी दुःख-गाथा पहुँचायी पर उन्होंने कहा कि अधिक से अधिक मैं यही वादा कर सकता हूँ कि साल में एक बार इलाहाबाद आकर त्रिवेणी-सङ्गम पर सर मुड़वा जाऊँ। खैर जाने दीजिये, अपने राम को क्या, एक राजधानी से मतलब, चाहे कहीं भी हो। इन्हीं सब झगड़ों से अलग रहने के लिये मैं बाबा विश्वनाथ की राजधानी काशी में रहता हूँ। मैं तो इलाहाबाद का नाम भी न लेता पर क्या करूँ, उसका रँडापा देखकर दया आ ही जाती है।

सच बात यह है कि न लखनऊ मेरे ऊपर फ़िदा है और न मैं लखनऊ पर, जब से सिर गंजा होने लगा तभी से मैंने फ़िदा होने की आदत ही छोड़ दी। लखनऊ मैं कई बार गया हूँ। नगर ऐसा कोई बुरा नहीं है। सड़कें बहुत चौड़ी हैं जिन पर मोटरों को लड़ने मे कोई बाधा नहीं पहुँचती। हिन्दू होटल कई हैं जहाँ हिन्दू लोग कुशासन पर बैठकर हिन्दू बिस्कुट और हिन्दू कलिया खाते हैं। स्कूल और कालिजों की भरमार है जहाँ देश के नवयुवक दिन दहाड़े अपना भविष्य सुधारते हैं। ताँगे और एक्के बेशुमार हैं जिन्हें अधिकतर नवाब-जादे ही हाँकते हैं। जूतों की दुकानें बहुत हैं जिनकी हिन्दू-मुस्लिम दङ्गों में अच्छी बिक्री हो जाती है। भाँडों की पैदावार यहाँ

अच्छी होती है। जनानी दूकानें हर गली कूचे मे दिन रात खुली रहती हैं जहाँ प्रमेह का विनिमय बडे धडल्ले से होता रहता है। शादी-ब्याह के अवसर पर यहा के निवासी कचालू और ककडो का भोज देते हैं। अण्डा यहाँ की साग-भाजी है जिसे उबालने के लिये 'हरद्वार' से गङ्गाजल मँगाया जाता है। सुना है कि यहाँ सीधी टोपी देकर सडक पर निकलना मना है। मकडी के जाले की पोशाक यहाँ के शौकीन अधिक पसन्द करते हैं। पर्दे की रस्म सबको बहुत प्रिय है यहाँ तक कि हवाई जहाज अगर शहर के ऊपर से उडकर जाता है तो उडानेवाले को आँख पर पट्टी बाँध लेना होता है।

शहर गोमती पर बसा हुआ है। स्यात् इसी कारण से गोमाता की रक्षा यहाँ आवश्यक नहीं समझी जाती। जबह की हुई गौओं की लाशों को ठेलों पर लादकर इधर-उधर ले जाना यहाँ का कोई असाधारण दृश्य नहीं है, लेकिन हिन्दुओं के अत्यन्त आग्रह पर मुसल्मानों ने अपनी स्वाभाविक सहिष्णुता से इतना किया है कि 'गोबर का चौका लगाकर तब गोमास पकाते हैं।'

यहाँ की मुसलमान औरते पायजामा और हिन्दू औरतें अधिकतर घाँघरा पहिरती हैं। मेरी यह राय है कि सारे देश की हिन्दू औरते घाँघरा पहिरा करें, इसलिये कि मुसलमानों से कहीं मार पीट हो जाय तो हिन्दू मर्दों को छिपने की एक सुरक्षित जगह तो रहे।

नजाकत की तो यहाँ हद हो गयी है। रोज ही अखबारो मे खबर आती है कि अमुक बाग मे रात के समय कोई कली चिटकी, जिसका परिणाम यह हुआ कि आस पास की औरतों के कानों की झिल्लियाँ फट गयीं। जब ऐसी घटनाएँ अक्सर होने लगीं तो सरकार को लाचार होकर यह घोषणा करानी पड़ी कि शहर के भीतर रात मे कोई 'गुल' न खिला करे।

एक बार मेरे एक मित्र रेल से सफर कर रहे थे। उनके बगल मे एक मुसलमान सज्जन भी बैठे हुए थे जो लखनऊ के रहनेवाले थे—और इसी लिये अवश्य ही कोई नवाब रहे होंगे। लखनऊ स्टेशन पर दोनों आदमियो ने ककड़ियाँ खरीदीं। मुसलमान सज्जन ने बड़ी नफासत से ककड़ियो को छीलकर छोटे-छोटे टुकड़े किये और फिर एक-एक टुकडे को सूँघकर बाहर फेंकने लगे। मेरे मित्र से न देखा गया उन्होंने पूछा कि आप इन्हें खाते क्यो नहीं, सूँघ-सूँघकर बाहर क्यो फेंक रहे हैं? उन्होंने उत्तर दिया कि ककड़ियों के खाने में कोई मजा नहीं, उनकी खुशबू ही असल चीज है। इसके बाद मेरे मित्र ने भी मुसलमान सज्जन का अनुकरण किया, अन्तर इतना था कि वे खिड़की के रास्ते बाहर फेंक रहे थे और मेरे मित्र मुँह के रास्ते अन्दर।

अभी ज्याद दिन नहीं हुए कि लखनऊ के हिन्दू मुसलमानों में एक अच्छी भिडन्त हो गयी। दोनों भाइयों ने प्रेम मे एक दूसरे का फुस्त खोल दिया, आपस मे कुछ पटा बनेठी

का अभ्यास कर लिया गया और कङ्कडों के कुमकुमे भी छोड़े गये। मेरे एक मित्र को ठीक इसी अवसर पर किसी बड़े जरूरी काम का स्मरण हो आया और वे घर की रक्षा अपनी स्त्री पर छोड़कर साफ गाढ़ी से हाँफते हुए वनाग्म चले आये। मैंने उनसे कुल व्योरा पूछना चाहा पर दङ्गे को उन्होंने अपनी खिड़की की चिक में से देखा था, इसलिये ठीक हाल न बता सके। तब मैंने लखनऊ-स्थित निज संवाददाता को लिखा जो वहां के एक गण्य-मान्य सज्जन हैं और अखिल भारतवर्षीय अहिफेन-मण्डल के संस्थापक भी हैं। उन्होंने तार द्वारा मुझे सूचित किया कि अखबारवाले झगड़े की तह तक नहीं पहुँच पाये हैं। वास्तविक कारण झगड़े का यह था कि नित्य शाम को कुछ हिन्दू गोमती किनारे जाया करते थे और आटे की रामनामी गोलियाँ मछलियों को खिलाते थे। मुसलमानों ने कहा कि ऐसा करना अप्रत्यक्ष रूप से मुसलमानों को हिन्दू बनाने का प्रयत्न करना है, क्योंकि मछलियाँ रामनामी गोलियाँ खायँगी और फिर उन्हीं मछलियों को मुसलमान भी खायँगे और इसी तरह धीरे-धीरे उनमे राम नाम का प्रचार बढ़ेगा। बिलकुल ठीक है। इस सम्बन्ध में मुसलमानों की दूरदर्शिता सराहनीय है, लोग उड़ती चिड़िया पहिचानते हैं, ये तैरती मछली पहिचान गये। हिन्दू सदा के घोंघा हैं, सबसे हारे तो मछलियों के द्वारा शुद्धि के पैगाम भेजने चले।

करीब ३०० वर्ष हुए वेनी नाम के प्रसिद्ध कवि, घुडदौड देखने के लिये लखनऊ गये थे, उस समय वहाँ म्युनिसिपेलिटी का इन्तजाम अच्छा नहीं था, सो उन्होने एक शिकायत म्युनिसिपेलिटी की उस समय के समाचारपत्रों मे छपवायी जो इस प्रकार है—

गडि जात बाजी और गयन्दगन अडि जात
सुतुर अकडि जात मुसकिल गऊ की।
दामन उठाय पाँय धोखे जो धरत होत
आप गरकाप रहि जात पाग मऊ की।
बेनी कवि कहैं देखि थरथर काँपै गात
रथन के पथ ना विपद बरदऊ की।
बार बार कहत पुकार करतार तो सो
मीच है कबूल पै न कीच लखनऊ की॥

अब लखनऊ के सडकों की यह दशा नहीं रही। जब से लखनऊ यूनिवर्सिटी बन गयी है तब से सडको पर धूल रहने ही नहीं पाती, कीचड होगा कहाँ से? हर साल सैकडों वकील और ग्रेजुएट पास होते हैं जो आरम्भ में खाहमख्वाह थोडे दिनों तक धूल फाँकते हैं, इसी से अपने आप सडकें साफ होती रहती हैं, म्यूनिसिपेलिटी को विशेष परिश्रम भी नहीं करना पडता। वर्तमान नगर तो वास्तव में अतीव सुन्दर है, और जब से प्रान्तीय सरकार का अखाडा यहाँ आ गया है तब से तो सोने में सुगन्ध आ गयी है।

इधर मुझे एक विशेष काम से लखनऊ जाना पड़ा। वहाँ मेरा एक बड़ा आवश्यक काम अँटका हुआ है। मैंने मनौती मानी है कि यदि मेरा काम हो गया तो देश भर के पण्डों को एक-एक लँगोट उपहारस्वरूप भेंट करूँगा। भाग्य ने यदि इस बार मेरे साथ आँखमिचौनी न खेली तो शायद काम हो भी जाय, यों तो भाग्य से मेरी पैदायशी दुश्मनी है। मैं उसे छछूँदर की तरह महकता हूँ। महात्मा गाँधी ने अछूतोद्धार के लिये इतना प्रयत्न किया पर भाग्य ने मुझे अभी तक अछूत ही समझ रक्खा है। मुझे शोक इस बात का रहता है कि किस्मत मुझे देखकर न जाने क्यों घूँघट काढ लेती है, मैं यद्यपि न तो उसका ससुर हूँ न जेठ। यह भी नहीं होता कि घूँघट के भीतर ही से कभी-कभी मुस्करा दिया करे, खैर।

आप जानते होंगे कि परसाल अवध के एक बहुत बड़े ताल्लुकेदार राजा गावदीसिंह का लखनऊ में 'काशीवास' हो गया। राजा साहब मरे थे लखनऊ में, पर देश के कई दिग्गज पण्डितों ने यह व्यवस्था दी कि चूँकि मरते समय उनके मुख से 'काशी' शब्द निकला था इसलिये उनके मरने को साधारण मरना न कहकर 'काशीवास' ही कहना उचित है। पता लगाने पर मालूम हुआ है कि राजा साहब ने मरते समय अपनी अन्तिम साँस को बटोरकर काशी नामक अपने पुराने खिदमतगार को पुकारा था—"अबे कशिया, उल्लू का पट्ठा!"

खैर, राजा साहब को लेने के लिये जो यमदूत उस समय आये थे वे कुछ ऐसे उजड्ड थे कि उन्होंने राजा साहब को फुरसत के साथ मरने का मौका नहीं दिया। इतनी जल्दी मचाई कि वे अपने इस्टेट का कोई उचित प्रवन्ध भी न कर सके और चल बसे। लडका नाबालिग था और जमींदारी के जरूरी कामों मे सिर्फ गाली बकना अभी तक सीख पाया था। ऐसी अवस्था मे यह आवश्यक हो गया कि स्टेट के सुप्रवन्ध के लिये एक अच्छा मैनेजर नियुक्त किया जाय। फलत कमिश्नर साहब की आज्ञा से, कलेक्टर साहब की मर्जी से, जण्ट साहब की सलाह से, डिप्टी साहब की राय से और बैरिस्टर साहब की मदद से एक विज्ञापन का मसविदा तैयार कराया गया कि अमुक स्टेट के लिये एक मैनेजर की आवश्यकता है। विज्ञापन अखबारों मे छाप दिया गया। सिर्फ ऐसे लोगो की अर्जियाँ माँगी गयी थीं जिन्हे नाच मुजरे का शौक हो और छठे-छमासे इलाकों के काम को देख लेने की फुरसत। विज्ञापन पढते ही मैंने निश्चय कर लिया कि यही मौका है अपने कर्म की रेख पर मेख मारने का। मैं इस स्थान के लिये सर्वथा उपयुक्त हूँ, मेरे अस्तित्व में यदि यह स्थान रिक्त रहे तो उस स्टेट का दुर्भाग्य।

विज्ञापन में फुरसत की आवश्यकता बतायी गयी थी। भला फुरसत की कौन सी कमी मुझे है। मेरे पास फुरसत के सिवा और है ही क्या? मेरी पढायी लिखायी भी निहायत

फुरसत के साथ हुई थी और जब से कालिज छोडा है तब से तो फुरसत के अथाह समुद्र में गोते लगा रहा हूँ। यो कहिये कि इस समय फुरसत ही मेरी चौहद्दी है।

रहा नाच मुजरे का शौक। कुछ तो यह है भी, बाकी राज-काज के सिलसिले में हो ही जायगा। मेरा यह सदा से विश्वास रहा है कि नाच-मुजरा कोई बुरी चीज नहीं है। भगवान् इन्द्र के यहाँ तो इसका एक Department ही अलग है। रईसो के धन के लिये यह एक बहुत जरूरी जुलाब है—कोषवद्ध भी कोष्ठवद्ध की तरह एक भयानक रोग है। आखिर इतने रईस जो नाच-मुजरे से प्रेम रखते हैं वे सब के सब क्या जहन्नुम की सडक पीट रहे हैं ? देश के प्राय सभी बडे-बूढे, धनी-मानी, सेठ-साहूकार, राजे-महराजे और सन्त-महन्त जिस प्रथा को अभिनन्दनीय समझे उसकी तरफ हम आप कौन होते हैं कि अँगुली उठावें ? एक मठाधीश ने मुझसे कहा कि यदि मङ्गलामुखी का नाच न हो तो कृष्ण जन्माष्टमी के दिन ठाकुरजी का जन्म कैसे हो ? ठीक ही है, नवजात ठाकुरजी के कर्कश 'केहाँव, केहाँव' को कर्ण-मधुर बनाने के लिये आवश्यक है कि उसके साथ दो चार कोकिल-कण्ठ-वालियों की गिटकिरी का पुट दे दिया जाय।

पहिले तो नाच मुजरा किसी हालत से पाप नहीं कहा जा सकता और यदि पाप है भी तो क्या हम हिन्दू ऐसे हर-

पोक हैं कि पाप के डर से परम्परा की प्रथा छोड देंगे ? परमात्मा भी कितना अन्यायी है । मुसलमानो के लिये मरने के बाद भी हूरो का प्रवन्ध है पर हम हिन्दू जीते जी जो कुछ कर ले वही बहुत है । उस पार कुछ अप्सरायें हैं जरूर, पर देवताओ ने पहिले ही से उन्हे अपने हत्थे चढा रक्खा है ।

सबसे बडी बात, इस सम्बन्ध मे, सोचने की यह है कि जिन बिचारियो ने नाचना-गाना सीख लिया है वे अब कण्ठी लेकर कहाँ जायँ ? काबुल जाकर सुखी कूटें—या लङ्का जाकर रावण के वंशजो का पता लगावें—या बंगाल की खाडी में डुबकी मारें—या गले मे रस्सी बाँधकर पालना झूलें—या क्या करें ? आप इनको लेकर अपने घर बसाने पर राजी हों तो ये आज आपके साथ पानी मे मिश्री की तरह घुल-मिल जाँय। आखिर इनके शरीर मे भी तो वही पेट-रूपी 'भूतो की हवेली' बनी हुई है। आपके फरहारी उपदेश से तो वह भरेगा नहीं ? उसके लिये कोई प्रवन्ध कीजिये। जैसे लाखों रुपये देवालय, चिकित्सालय, विद्यालय और अनाथालय बनवाने में लगाते हैं वैसे ही दस-पाँच लाख एक पतुरियालय बनवाने में खर्च कर दीजिये। ईश्वर ने अगर मुझे धन दिया तो मैं अवश्य एक 'पतुरियालय' खोलकर समाजसेवा करूँगा। उसका पता मैं प्रकाशित कर दूँगा । हो सके तो किसी तातील में आइयेगा ।

हाँ, तो उस विज्ञापन को देखकर कितने फुरसत के सताये हुए नवयुवकों के मुँह मे लार के चश्मे फूट पड़े । नियुक्ति

न जाने कैसे लखनऊ के कमिश्नर साहब के हाथ मे थी। विज्ञापन निकलने के कुछ ही घण्टो बाद से कमिश्नर साहब के ऊपर अर्जियों के ओले बरसने लगे। मैंने भी झट से एक बारह पेज की अर्जी लिखकर बैरग रवाना कर दी।

अर्जी भेज देने पर हृदय में इस बात की खलबली पड़ी कि देखें कोई उत्तर आता है या नहीं। चार पाँच दिन तक तो मारे चिन्ता के नींद नहीं आयी, मुश्किल से दो घण्टे दिन में और सात घण्टे रात में सो सका। जब कभी डाकिये को देख पाता तो उसके गले से लिपटकर पूछता कि "प्यारे! कोई मेरी भी चिट्ठी है?" देर होते देखकर मुझे यह भी चिन्ता हुई कि कहीं कमिश्नर साहब को लँगडे बुखार ने तो नहीं धर दबाया। एक बार इरादा हुआ कि उनको लिखें कि 'आशा करता हूँ आप सपरिवार कुशल से होंगे' पर इसी बीच मे उनका एक खत आ ही गया। सिर्फ इतना लिखा था कि personal interview के लिये कमिश्नर साहब आपको सलाम भेजते हैं। इस पत्र को मैंने बडे यत्न से रख छोडा है। यदि काम हो गया तो ठीक ही है, नहीं दिखाने के लिये रहेगा कि मुझे ऐसी अच्छी जगह मिल रही थी पर मैंने किया नहीं।

[२]

अब मैं इस उधेड़-बुन मे लगा कि राहखर्च के वास्ते कुछ रोकड़ जुटानी चाहिये। जब से रुपयों ने मेरे जेब मे

हडताल वोल दी तव से मैं अपने पास छदाम रखना भी हराम समझता हूँ, और जरूरत ही क्या है ? पान-पत्ता दोस्तों के यहाँ, नाश्ता-पानी ससुराल मे और भोजन सत्रों में कर लेता हूँ। यदि आपने पुराणो के पन्ने उलटे होंगे तो अवश्य जानते होंगे कि मेरे जेव की ऐसी शोचनीय दशा क्यों, कैसे और कव से हुई। भगवान् ने वामन रूप धारण करके दानवराज वलि से तीन पग भूमि माँगी, वलि ने विना वकीलो की राय लिये उन्हे तीन पग भूमि सङ्कल्प कर दी। परिणाम यह हुआ कि दो ही पग मे वामन भगवान् ने स्वर्ग और मर्त्यलोक नाप डाला, तीसरा पग रखने के लिये कोई स्थान ही नहीं वचा। जव वलि ने देखा कि किसी प्रकार छुटकारा नहीं है तव चुपके से उन्होंने मेरे जेव की ओर इशारा कर दिया और वामन भगवान् तीसरे पग से उसे नापकर चलता हुए।

वहुत दिनो के वाद यह एक ऐसी परिस्थिति आ पडी थी, जो विना कुछ रुपयों के हल होती नहीं दीख पडती थी। वहुत सोच विचार के वाद मैंने कुछ कर्ज लेने का निश्चय किया। अर्थशास्त्र का कई मन्वन्तर लगातार अध्ययन करके मैंने यह निष्कर्ष निकाला है कि कर्ज लेना सभ्य समाज की अनुकरणीय सुव्यवस्थाओं में है। खाना पीना, सोना और क़र्ज लेना शरीर के धर्म हैं। जव इतनी वडी गवर्न्मेन्ट कर्ज लेती है तो हम आप उसकी प्रजा होकर क्यों न ले ? यूरोप में लोग ऋण

के वल पर महासमर छेड देते हैं, मैं अपने देश मे ऋण के बल पर सफर भी न करूँ।

पर कहाँ कर्ज मिले तब तो। कितने ही, दोस्त और साथियों के दरवाजे खटखटाये पर सब व्यर्थ। किसी का कोई मर गया था, किसी का कोई मरनेवाला था, किसी के सेफ की ताली खो गयी थी और कोई वड लाट की जमानत माँगता था। एक मित्र ने कहा कि मैं रुपये तुम्हें जरूर देता पर कल ही मेरी विरादरी की पञ्चायत हुई जिसमे यह तय पाया कि अगर कोई किसी को रुपया उधार देगा तो जाति से वाहर कर दिया जायगा। क्या ऐन वक्त से पञ्चायत हुई थी।

कहा जाता है कि आवश्यकता आविष्कारों की जननी है। जब मैंने देखा कि ऋण-उधार पाने की कोई आशा नहीं है तब मैंने एक ऐसा उपाय सोच निकाला जो अत मे अचूक सावित हुआ। रात मे स्त्री को सोती हुई पाकर उसके एक हाथ का पेचदार कडा उतार लाया। पुराने जमाने में राजा नल ने इस तरकीब की रजिस्टरी करायी थी,—दमयन्ती को सोती हुई पाकर उसकी आधी साडी फाडकर चम्पत हो गये थे।

कडे को बन्धक रखकर मैंने कुछ रुपये खडे कर लिये और झट टिकट कटाकर रेल पर सवार हो गया। रास्ते में कोई भी उल्लेखनीय घटना नहीं हुई, यहाँ तक कि एक बार भी मेरी गाडी ने किसी दूसरी गाडी से टक्कर नहीं ली। हाँ, एक बात मैंने वहाँ विचित्र देखी, वह यह कि जब गाडी जोर से

चलती थी तो ऐसा जान पड़ता था कि आस-पास के मकान और पेड भी सङ्ग-सङ्ग दौड़ते जा रहे हैं। इसका कारण मैंने देश के प्रमुख विज्ञानवेत्ता प्रो० श्रीरामदासजी गौड से पूछा। उन्होंने उत्तर दिया कि "आपका प्रश्न टेढ़ा है। मैं स्वय भी इसी विषय पर बहुत दिनों से गौर कर रहा हूँ। मेरी समझ मे इस प्रश्न का संतोषजनक उत्तर पाने के लिये आपको वैज्ञानिक अद्वैतवाद का सहारा लेना पडेगा। सुनिये—

"जिस प्रकार माया-ब्रह्म के सश्लेप-जन्य अन्योऽन्याश्रय के अनावच्छिन्न शक्यता के सम्बद्धघर्ष और समवायीकरण से हेतु हेतुमद्भूतत्व का आविर्भाव होकर, विधेय-प्राधान्य और अनुभवगम्य द्वन्द्व-रूपता तथा उपबृहण विकल्पाभासो मे अस्मद् युष्मद् का भ्रम होता है, ठीक उसी प्रकार रेल की सवारी मे आस पास की स्थावर चीजें जङ्गम प्रतीत होती हैं।" कहने की आवश्यकता नही कि इस उत्तर ने मेरे मस्तिष्क के लिये ब्राह्मी-घृत का काम किया।

तीसरे पहर रेल ने मुझे लखनऊ स्टेशन पर उतार दिया कुली और ताँगेवालो की छाती पर मूँग दलता हुआ मैं पैदल ही, गठरी बगल में दबाकर, वहाँ से चलता हुआ। मैं आजकल के छैलों के सहारे चलनेवाले नौजवानोसा नहीं हूँ कि एक छोटी सी गठरी ले चलने मे कमर की तीलियाँ खिसक जातीं। मैं अब यह सोच रहा था कि ठहरूँ कहाँ, शहर में किसी से भी परिचित नहीं था। होटल में ठहरता तो टोटल

कहाँ से चुकाता, इतने रुपये पास थे नहीं। कुछ निश्चय नहीं कर पाया। घूमते-घूमते सन्ध्या हो गयी और थोडी देर में समस्त नगर बिजली की रोशनी से 'चमकायमान' हो उठा। कुछ भूख-मिश्रित नींद भी मालूम पडने लगी, पेट को कुछ दे-दिलाकर शान्त किया और एक निर्जन सडक के किनारे पडकर "जहँ पडे मुसल, तहँ छेम कुसल" को चरितार्थ करने लगा।

सुबह मेरी नींद खुली तो देखा कि छ बजा है। कमिश्नर साहब से मुझे ९ बजे मिलना था। मैंने सोचा कि अभी समय काफी है, दाढी बनवा लूँ क्योंकि अफसर-गण ऐसे लोगों से नहीं मिलना चाहते जो अपने मुँह पर काँटों की खेती करते हैं। मुझे दाढी बनवाने का ख्याल भी न आता पर एक मक्खी ने बार-बार मेरे चेहरे पर बैठकर मुझे याद दिलायी। उसे मारने के लिये झुँझलाकर ज्योंही मैंने अपने मुँह पर एक तमाँचा लगाया त्योंही ऐसा जान पडा कि हथेली में काँटे चुभ गये, दाढी इस कदर बढ आयी थी। जब खुद अपने हाथों को इतनी तकलीफ हुई तब अगर किसी वजह से कमिश्नर साहब एक चपत मार बैठें तो उनकी कोमल हथेलियाँ छिदकर चलनी हो जायँगी। यह ख्याल एक राजभक्त को व्यग्र कर देने के लिये काफी था। मैंने तत्क्षण निश्चय किया कि दाढी साफ कराकर ही साहब से मिलूँगा।

लखनऊ में गली-गली Shaving and Hairdressing Saloons हैं। मैं एक ऐसी ही दूकान मे पिल पडा श्रौर नाई की प्रतीक्षा करने लगा जो सम्भवत थोडी देर के लिये किसी काम से बाहर गया था। कमरे में एक शुभ्र-वस्त्र-धारी सज्जन भी वैठे थे, जो, शायद मेरी ही तरह दूकान के मालिक की प्रतीक्षा कर रहे थे। जब मुझे करीब आधा घण्टा इन्तजार करते हो गया श्रौर नाई के दर्शन न हुए तो मैंने घबडाकर इन्हीं सज्जन से पूछा कि आप बता सकते हैं कि इस दूकान का मालिक कहाँ मर गया है? आधे घण्टे से उसके इन्तजार मे बैठा हूँ पर उस कम्बख्त का कहीं पता तक नहीं है। उस शुभ्र वस्त्र-धारी सज्जन ने इसका जो उत्तर दिया उससे मैं वडा लज्जित हुआ, उन्होंने कहा—महाशय! मैं ही इस दूकान का मालिक हूँ श्रौर आपकी दाढ़ी बनाऊँगा तो मैं ही बनाऊँगा। आपने आते ही अपना अभिप्राय तो बताया नहीं, चुपके से वैठ रहे, मैंने जाना कि आप रास्ते की थकावट दूर कर रहे हैं। अब आपकी दाढी उसी हालत में बन सकती है जब आप उन बेजा अलफाज को वापस लें जिन्हें आपने अभी मेरी शान में कह डाले हैं।

सुभान तेरी कुदरत! भला मैं ख्वाब देख रहा था कि ऐसे सुन्दर वस्त्रों से आच्छादित, कुर्सी पर आसीन, देखने में सुसज्जित जेन्टलमैन पेशे से हज्जाम हैं। हमारी काशी में भी हज्जाम हैं, पर वे बिचारे तो कौस में किस्बत श्रौर ह

में लुटिया लिये घूमते रहते हैं। मैंने अपनी गलती के लिये उनसे केवल क्षमा ही नहीं माँगी वल्कि यह भी वादा किया कि अब किसी Well-dressed Gentleman को देखूँगा तो पहिले उन्हें हज्जाम समझकर तब दूसरा कुछ समझूँगा।

इसके बाद नापितवर ने प्रसन्न होकर कहा—"यहां आइये।"

मैं उनके पास गया।

कुर्सी की ओर इशारा करके—"बैठ जाइये।"

मैं कुर्सी पर बैठ गया।

"सर उठाइये।"

मैंने सर उठाया।

"आँखें बन्द कीजिये।"

मैंने आँखें बन्द कीं।

"ईश्वर का ध्यान कीजिये।"

मैंने ईश्वर का ध्यान किया।

"परमात्मा से अपने गुनाहों की माफी माँग लीजिये।"

मैंने ऐसा ही किया, गो अपने गुनाहों की फिहरिस्त मैं मकान ही पर भूल आया था। यह सब किया तो पर समझ में न आया कि क्यों। ईश्वर का ध्यान करना और अपने गुनाहों की माफी माँगना बहुत अच्छे काम हैं, लेकिन मौके से। दाढ़ी बनवाने के पूर्व इन कार्रवाइयों का क्या मौका था यह मेरी समझ में नहीं समाया। आखिर मैंने दबी जबान

उनसे पूछा कि आपने यह जो धार्मिक कवायद मुझसे करायी उसका क्या अर्थ है ? नापितवर ने उत्तर दिया—"दाढ़ी बनवाना आग से खेलना है, मेरा तेज अस्तुरा बराबर आपके चेहरे पर नाचता रहेगा, कहीं बहककर आपके गले में लग गया तो निश्चय जानिये कि आपका काम तमाम हो जायगा, इसलिये आपकी आत्मा को हर तरह से तैयार रहना चाहिये कि कौन जाने ससार से कूच करना ही पड़े।"

नाहक पूछने गया। अनजाने जो कुछ हो जाता वह तो सहन करना ही पड़ता। पूछकर मुफ्त मे जड़ैया बुखार मोल लेने गया। घरवालों और घरवालों की सुध से आँखें डब-डबा उठीं। सोचने लगा कि देखूँ, अब इन आँखों से काशी के 'वन-बाग-तड़ाग' निहारता हूँ या नहीं।

[३]

नापित-कुल-कमल-दिवाकर ने छप-छप ध्वनि के साथ दो चिल्लू पानी से मेरे मुख पर तर्पण किया, इसका अर्थ मैंने यह लगाया कि अब मेरी दाढ़ी भिंगायी जा रही है। इसके बाद उन्होंने एक छोटा सा झाड़ू और एक बट्टी साबुन कहीं से बरामद किया। हिन्दी व्याकरण के जाननेवाले छोटे से झाड़ू को झड़ुआइन कहेंगे—जैसे साढ़ू, सढ़ुआइन—पर अँगरेजी जाननेवाले उसे Shaving Brush के नाम से पुकारेंगे। खैर साबुन और शेविंग ब्रश के सयुक्त उद्योग से मेरा मुँ

थोडा देर में चोरमागर का मानचित्र वन गया। नापितवर ने कृपा करके थोडा साबुन मेरी आंखो मे भी चले जाने दिया, जिससे मुझे दिव्य दृष्टि का आनन्द मिलने लगा।

यह सब तो हो रहा था पर वोच-वोच मे नापितवर वडो कुरुचिपूर्ण निगाहों से मेरी ओर देखते जाते थे। उन्होंने ऐसा कहा तो नहीं पर अन्य तरीकों से यह भाव प्रकट कर दिया कि मेरे मुख की बनावट उनको बिल्कुल नापसन्द थी। मुझे स्वय भी अपने मुख की वनावट के दुरुस्त होने में सन्देह है पर अब तो चाहे भला है या बुरा, है तो अपना मुँह।

नापितवर ने अब अस्तुरे का प्रयोग आरम्भ किया। अस्तुरे की सूरत से यह साफ जाहिर होता था कि कभी उसने किसी आरी से आशनाई कर ली थी। उसे देखकर मेर शरीर में भूकम्प सा आने लगा। यदि थोडी देर के लिये मेरा मुख चन्द्रमा मान लिया जाय तो यह कहा जा सकता है कि यह अस्तुरा राहु बनके मेरे मुखचन्द्र को ग्रसने आ रहा था।

नापितवर ने पूछा—कहिये क्या साफ करूँ और क्या छोड दूँ ?

मैंने अत्यन्त नम्रता के साथ उत्तर दिया कि दाढी तो साफ हो कर दीजिये, भौं और बरौनी यदि कोई अडचन न डालें तो उन्हें छोड दीजिये, और मूछों के बारे में जैसी आपकी राय हो वैसा करिये।

इसके बाद जो कुछ हुआ उसका ब्योरेवार वर्णन मैं नहीं कर सकता। अपनी जान को पड़ी थी, ब्योरा कहाँ से नोट करता। इतना याद है कि अस्तुरे ने वह-वह पैतरे दिखलाये कि मैं काठ बन गया। चेहरे पर खर—खर—खरर—खरर खर—खर—खर का संगीत हो रहा था और मैं अपने सी—सी—उफ—उफ—सी—सी—उफ से ठेक भर रहा था। जब कभी इससे छुट्टी मिलती तो हनुमानचालीसा का पाठ करने लगता।

इतना मुझे अच्छी तरह याद है कि नापितवर को जब जब मेरा मुँह दाहिने-बायें घुमाना होता था तो मेरी नाक पकड़ कर घुमा देते थे। यद्यपि उनका ऐसा करना प्रकृति के नियमों के विरुद्ध नहीं था, क्योंकि मुँह का यह स्वाभाविक धर्म है कि जिधर जिधर नाक जाय उधर-उधर वह भी जाय, पर इस प्रकार की धर पकड़ से मेरी नाक चुटैली हो चली और मैंने नापितवर से कहा—"आपको मेरा मुँह दाहिने-बायें घुमाना हो तो या तो आप Right Turn, Left Turn कह दिया करिये मैं स्वयं अपना मुँह घुमा लिया करूँगा, और नहीं तो मेरे दोनों कान हाजिर हैं जिनको बचपन से पकड़े जाने की आदत है, नाक के बजाय इनको पकड़कर दाहिने बायें जैसे चाहिये घुमा लीजिये, पर मेरी इकलौती नाक से यदि आप Handle का काम न लें तो मैं आपका बड़ा एहसान मानूँ।"

मुझे अपनी नाक ही की पडी थी पर यहाँ तो अस्तुरे के दुर्दान्त प्रलय-चक्र से मेरी मौखिक आकृति का सर्वांशत संहार होता दिखाई पडता था, और उसके रोकने का कोई उपाय भी न था। यदि नापितवर ने अपना काम अधूरे ही पर छोड दिया होता तो मैं उन्हे हार्दिक धन्यवाद देता और अपने बचे खुचे मुख से ही अपनी जिन्दगी काट लेता, पर इतने सस्ते छूटना भाग्य में नहीं लिखा था। अस्तुरे की लपलपाती जिह्वा सारे मुख को चाटती चली जा रही थी। देखते देखते मुँह का एक परत चमडा छील डाला गया। एक बार प्राणभिक्षा माँगने के लिये मैंने मुँह खोलना चाहा पर अस्तुरे ने मुख-विवर में घुसने की इच्छा प्रकट करके मुझे फौरन मुँह बन्द कर लेने के लिये बाध्य किया।

अधिक क्या कहूँ, यही समझिये कि बडे सङ्कट में प्राण पडा हुआ था। सोचने लगा कि इतनी उमर अकारथ गयी। कुछ परमार्थ नहीं कमाया, अब चला-चली के समय हाथ मलना हाथ लगा। एक ज्योतिषी ने मुझे बताया था कि तुम्हारी मृत्यु किसी सुन्दर देवस्थान में होगी पर मुझे यह नहीं मालूम था कि देवस्थान का अर्थ हज्जाम की दूकान है।

एक बार मेरी स्त्री ने मुझे अपने पैर के नाखून बनाने के लिये कहा था पर मैंने मारे शान के नहीं बनाया। सम्भवत आज उसी पाप का फल भोग रहा था।

इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि जितने जख्म मुझे इस समय मुँह पर लगे थे उतने गत यूरोपियन महासमर में लगे

होते तो मैं अब तक भारत का सिपहसालार बना दिया गया होता। इन विचारों ने मुझे और भी दुःखित कर दिया और मैं आँख बन्द करके सोचने लगा कि वैतरणी का पाट कुल कितना चौड़ा है।

आखिर इस कृत्य का भी अन्त हुआ और नापितवर ने मुझे कुर्सी से उठने की अनुमति दी। इसमे कोई शक नहीं कि मेरी नई जिन्दगी हुई। उठकर मैंने अपनी नाक टटोली। देखकर खुशी हुई कि नाक करीब करीब ज्यों की त्यों थी, पर जब मैंने अपने मुँह पर हाथ रक्खा तो ऐसा जान पड़ा कि मुँह पर खून की क्यारियाँ बन गयी हैं। नापितवर से मैंने आइना माँगा पर उन्होंने देने से इनकार किया और कहा—"आपका मुँह इस काबिल नहीं है कि आप आइना देखें।"

मेरा अनुमान है कि किसी ऐसे ही नाई से काम पड़ने पर कबीर साहब ने लिखा था—"मुखड़ा क्या देखो दरपन मे।"

उपसंहार

हजामत मेरी बनी और खूब बनी। ऐसी हजामत जिन्दगी में एक ही दो बार बनती है। नापितवर ने चार आने पैसे मुझसे ऐंठ लिये—जो जान बख्श देने के ख्याल से कम थे।

मैं उनकी दूकान से बाहर आया। मुँह पर जहाँ-तहाँ कुछ सूजन सी हो आयी थी। इच्छा हुई कि नापितवर से लौटकर कहूँ कि "तुम्हीं ने दर्द दिया है तुम्हीं दवा देना" पर दूकान के अन्दर फिर कदम रखने की हिम्मत नहीं हुई।

साढे आठ का समय हो गया था और नौ बजे साहब से मिलने की बात थी, पर फिक्र यह पैदा हो गयी थी कि अब क्या मुँह लेकर उनसे मिलूँ, लेकिन लाचारी थी, बिना मिले लौट भी नहीं सकता था। फिर यह भी खयाल आया कि मुँह तो बिगड़ता बनता रहेगा पर कमिश्नर साहब से रोज मुलाकात कहाँ होगी।

मैं लम्बे-लम्बे डग मारता हुआ ठीक समय से उनके बँगले पर पहुँच गया। बाहर किसी को न देखकर मैं 'महरिन, महरिन' पुकारने ही जा रहा था कि एक अर्दली मुझे गर्दनिया देने की नीयत से बाहर निकला।

साहब लोगों के अर्दलियों के प्रति मेरे हृदय में सदा से बड़ी श्रद्धा रही है। उन्हें देखकर अनायास मेरे मन में

आदर और भय का सञ्चार होता है। मैं जानता हूँ कि उनका ओहदा कितना ऊँचा है, उनका मान, उनका प्रभाव, उनका दबदबा कितना बड़ा है। उनकी चपरास पर कुछ ऐसा वशीकरण लिखा रहता है जिसे पढ़कर कितने रईसों की भी इच्छा होती है कि उनके पैरों के आगे अपने को बिछा दे। किसी कवि ने कहा है—

भोजन में भट्ट बली लट्ठ बली हुज्जत में
मूस बली प्लेग मे औ घूस कचेहरी में।
कानन मे केहरी, दुपहरी में भानु बली
बली अर्दली बडे साहब की डेहरी मे॥

अस्तु, अर्दली महोदय ने अपना फौलादी पजा मेरे गर्दन पर रख दिया और ढकेल कर मुझे फाटक बाहर करने लगे। मैंने उनकी कोटिश बलैयाँ लेकर उन्हें शान्त किया और तब उन्हे समझाया कि कमिश्नर साहब ने मुझे मिलने के लिये आज बुलाया है। इस पर उन्होंने मेरा कार्ड मुझसे माँगा।

कार्ड-वार्ड तो मेरे पास था नहीं, हाँ मेरे कमीज के कोने मे धोबी की स्याही से मेरा नाम लिखा हुआ था। मैंने उतना कोना कमीज से फाड़कर चपरासी को दे दिया और कहा कि ले जाव यही मेरा कार्ड है। एक बार तो उसने घृणा / तिरस्कार की हलाहल दृष्टि से मेरी ओर देखा पर कमीज के टुकड़े ही को ग़नीमत समझकर पास ले गया।

थोड़ी देर में चपरासी ने बाहर आकर मुस्कराते हुए कहा कि साहब आपको देखने के लिये बड़े उत्सुक हैं, आप सीधे अन्दर चले चलिये। मुझे यह देखकर खुशी हुई कि टाइटिल के उम्मेदवारों की तरह मुझे ड्योढ़ीदारी नहीं करनी पड़ी बल्कि फौरन् मैं साहब के सामने पेश किया गया।

कमरे मे चार-पाँच अँगरेज बैठे हुए थे, इसलिये मैं पहले पहचान न सका कि कमिश्नर साहब कौन हैं। मैं सिर खुजलाते हुए सोचने लगा कि किसको प्रणाम करूँ और किसको न करूँ। अन्त में कुछ निश्चय न कर सकने के कारण मैंने बारी-बारी सबके पैर छूकर पालागन किया।

कमरे में संयोग से सभी कुर्सियाँ फँसी हुई थीं। इसलिये लाचार मैं पालथी मारकर पायदाज पर बैठ गया, और इन्तजार करने लगा कि कोई मुझसे बोले तो मैं भी बोलूँ। पर कई मिनट बीत गये कोई बोला नहीं—और बोलता कैसे, सबके सब मुँह मे रूमाल ठूँसकर हँस रहे थे।

मैंने उनको मुँह में रूमाल ठूसे हुए देखा अवश्य, पर फौरन समझ न सका कि वे हँस रहे हैं। पहले मैंने जाना कि यूरोपियन समाज का यह सदाचार है कि आपस में मिलते समय मुँह में रूमाल ठूस लेते हैं, मगर जब कई मिनट गुजर गये और कोई बोला नहीं तब मैंने सोचा कि मैं भी उन्हीं की तरह जब तक अपने मुँह में रूमाल न रख लूँगा तब तक वे

आदर और भय का सञ्चार होता है। मैं जानता हूँ कि उनका ओहदा कितना ऊँचा है, उनका मान, उनका प्रभाव, उनका दबदबा कितना बड़ा है। उनकी चपरास पर कुछ ऐसा वशीकरण लिखा रहता है जिसे पढ़कर कितने रईसों की भी इच्छा होती है कि उनके पैरों के आगे अपने को बिछा दें। किसी कवि ने कहा है—

भोजन में भट्ट बली लट्ठ बली हुज्जत मे
मूस बली प्लेग मे औ घूस कचेहरी मे।
कानन में केहरी, दुपहरी मे भानु बली
बली अर्दली बड़े साहब की डेहरी में॥

अस्तु, अर्दली महोदय ने अपना फौलादी पंजा मेरे गर्दन पर रख दिया और ढकेल कर मुझे फाटक बाहर करने लगे। मैंने उनकी कोटिश: बलैयाँ लेकर उन्हें शान्त किया और तब उन्हे समझाया कि कमिश्नर साहब ने मुझे मिलने के लिये आज बुलाया है। इस पर उन्होंने मेरा कार्ड मुझसे माँगा।

कार्ड-वार्ड तो मेरे पास था नहीं, हाँ मेरे कमीज के कोने मे धोबी की स्याही से मेरा नाम लिखा हुआ था। मैंने उतना कोना कमीज से फाड़कर चपरासी को दे दिया और कहा कि ले जाव यही मेरा कार्ड है। एक बार तो उसने घृणा और तिरस्कार की हलाहल दृष्टि से मेरी ओर देखा पर अन्त में कमीज के टुकड़े ही को गनीमत समझकर साहब के पास ले गया।

अक्ल मुझे और दे दी होती तो क्यों ससार में सब जगह अपनी हँसी कराता फिरता।

आखिर बड़े प्रयत्न से कमिश्नर साहब ने अपनी हँसी रोककर पूछा—"आपही का नाम लाला मल्लूमल है।"

मैंने कहा—"जी हाँ, हुजूर।"

"आप ही ने दस पेज की अर्जी लिखकर भेजी थी ?"

"जी नहीं धर्म्मावतार। मेरी अर्जी पूरे बारह पेज की थी ?"

मैंने बड़ी व्यग्रता के साथ यह उत्तर दिया। सवा बारह पेज मैं मान सकता था पर पौने बारह तो किसी हालत से नहीं मान सकता था। इसके क्या माने कि मैं लिखूँ बारह पेज और बतलाये जायँ दस। अधिक लिखने की क्षमता होते हुए भी मैंने केवल बारह पेज लिखकर सन्तोष कर लिया था पर जब उसमें भी कमी करके उन्होंने दस ही बतलाये तब आप यकीन मानिये कि मेरे कान खड़े हो गये। कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि अन्त के दो पेज उन्होंने पढ़े ही नहीं। तब तो मेरी सारी मेहनत बेकार गयी क्योंकि वही अन्तिम दो पेज मेरे आवेदनपत्र के प्राण थे—शुरू के दस पेज तो महज प्रस्तावना मात्र थे। उन्हीं अन्तिम दो पत्रों में मैंने अपनी पात्रता सिद्ध की थी, अपनी संक्षिप्त जीवनी दी थी और अपने पूर्वजों की योग्यताओं का सविस्तर उल्लेख किया था—हाँ, अपनी योग्यताओं पर मैंने जान-बूझकर अधिक प्रकाश नहीं डाला

मुझे गँवार समझेंगे और मुझसे न बोलेंगे। इसी ख़याल से मैंने भी अपने मुँह मे रूमाल भर लिया।

मुझे ऐसा करते देख उन सभो की और भी विचित्र दशा हुई। दोनों हाथों से पेट दबाकर वे कुर्सी पर बैठे ही बैठे स्प्रिङ्गदार खिलौनो की भाँति हिलने लगे। ऐसा प्रतीत होता था कि उनके पेटों मे एलेक्ट्रिक डाइनेमो धक-धक धक-धक कर रहा है। पेट से कुछ अजब अर्द्ध-स्फुट खिल-खिल-खिल-खिल शब्द का प्रादुर्भाव होने लगा मानो हृदय के प्रबल आवेगों को गले मे ठेपी लगाकर रोकने का निष्फल प्रयत्न किया जा रहा हो। असीम हास्य से उनका सारा शरीर आन्दोलित होने लगा, यहाँ तक कि रूमाल मुँह में न टिक सका और छटक-कर दूर जा गिरा। अब तो वे ठहाके के साथ हँस पडे। मैंने भी अपने मुँह मे से रूमाल निकाल लिया पर उनको इस प्रकार बेतहाशा हँसते देख मैं ऐसा हक्का-बक्का हो गया कि बडा सा मुँह फैलाये उनकी ओर निहारता रह गया।

मुझे मुँह फैलाये देख उनकी हँसी और भी बढी। यहाँ तक कि एक अँगरेज सोफा पर लोट-पोट होने लगा, दूसरा ताली बजा-बजाकर पैर पटकने लगा और तीसरा अपने ही सीट पर खडा होकर नाचने लगा। जब इस प्रहसन ने अधिक जोर पकडा तब जाकर मेरी समझ में यह बात आयी कि हो न हो ये मेरे ही ऊपर हँस रहे हैं। मैंने सिर झुका लिया और सोचने लगा कि परमात्मा ने अगर दो ही चार मासे

था। फिर अपने जीवन की नून-तेल-सम्बन्धी आवश्यकताओं का और अपनी विकट परिस्थिति का जैसा नग्न चित्र मैंने खींचा था वैसा अब कोई नाक रगड़कर मर जाय पर नहीं खींच सकता। अन्त मे साधुवाद और धन्यवाद की जो पक्तियाँ मैंने लिखी थीं वे मेरे विचार से साहित्य में अमरत्व पाने के योग्य हैं। जहाँ तक मुझे स्मरण है मेरे अन्तिम शब्द ये थे—"ईश्वर करे आपको कबाब और केक की कभी कोई कमी न हो। आपका मोटर और आपका ताँगर सदा चलता रहे। आपका जेब और आपकी बोतल कभी खाली न हो। ईश्वर आपको शक्ति दे कि आप नाम पैदा करें, धन पैदा करे, पुत्र पैदा करें और हमारे ऐसे बेकारों के लिये काम पैदा करें। पाप से, श्राप से और त्रिताप से आपकी रक्षा हो। आपको लोग मघवा की तरह आदर दें और बबवा की तरह डरें। जीते जी आपको शिमला प्राप्त हो और मरने पर कैलास।"

अब आप समझ सकते हैं कि मैं अपनी अर्जी के अन्तिम दो पन्नो के लिये क्यों इतना चिन्तित था। कमिश्नर साहब मेरी चिन्ता दूर करते हुए बोले—"हाँ, हाँ, ठीक है, मैं भूल रहा था। आपकी अर्जी बारह पेज की थी।"

"तो आप उसे साद्यन्त पढ़ गये थे?"

कमिश्नर साहब ने अपने मित्रों की ओर सकेत करके कहा—"अकेले मैं ही ने नहीं पढा था बल्कि इन लोगों को भी

पढाया था। इसी समय से ये लोग आपके दर्शन के लिये अत्यन्त लालायित थे।"

मैं सोच ही रहा था कि किन शब्दो में कमिश्नर साहब के मित्रों को धन्यवाद दूँ कि इतने मे कमिश्नर साहब ने फिर कहा—"आपने कालिज में शिक्षा पायी है ?"

"जी हाँ, सर्कार !"

" बी० ए० पास हैं ?"

"दया सिन्धो ! मैं बी० ए० पास होता तो अब तक बेकार बैठा रहता ? अगर डिप्टी कलक्टर नहीं तो किसी म्युनिसपलिटी मे बिल-कलक्टर तो अवश्य ही हो गया होता।"

"आपने स्वर्गीय राजा गावदीसिंह के स्टेट की मनेजरी के लिये अर्जी भेजी है। उस जगह के लिये दो बातों की जरूरत है, एक तो नाच-मुजरे का शौक होना चाहिये, दूसरे छठे-छमासे इलाकों का काम देख लेने की फुरसत। आपने अपनी अर्जी मे लिखा है कि आप में ये दोनों बाते मौजूद हैं। आप इनको कैसे सिद्ध कर सकते हैं कि आपको फुरसत काफी है ?'

"गरीबपरवर ! अगर फुरसत न होती तो आपको बारह पेज की अर्जी कैसे लिखता ?"

इस उत्तर का कमिश्नर साहब पर गहरा प्रभाव पडा। उन्होंने फिर पूछा—"और इसका क्या प्रमाण है कि आपको नाच-मुजरे का काफी शौक है ?"

था। फिर अपने जीवन की नून-तेल-सम्बन्धी आवश्यकताओं का और अपनी विकट परिस्थिति का जैसा नग्न चित्र मैंने खींचा था वैसा अब कोई नाक रगड़कर मर जाय पर नहीं खींच सकता। अन्त में साधुवाद और धन्यवाद की जो पंक्तियाँ मैंने लिखी थीं वे मेरे विचार से साहित्य में अमरत्व पाने के योग्य हैं। जहाँ तक मुझे स्मरण है मेरे अन्तिम शब्द ये थे—"ईश्वर करे आपको कबाब और केक की कभी कोई कमी न हो। आपका मोटर और आपका जाँगर सदा चलता रहे। आपका जेब और आपकी बोतल कभी खाली न हो। ईश्वर आपको शक्ति दे कि आप नाम पैदा करें, धन पैदा करें, पुत्र पैदा करें और हमारे ऐसे बेकारों के लिये काम पैदा करें। पाप से, श्राप से और त्रिताप से आपकी रक्षा हो। आपको लोग मघवा की तरह आदर दें और बघवा की तरह डरें। जीते जी आपको शिमला प्राप्त हो और मरने पर कैलास।"

अब आप समझ सकते हैं कि मैं अपनी अर्जी के अन्तिम दो पन्नो के लिये क्यों इतना चिन्तित था। कमिश्नर साहब मेरी चिन्ता दूर करते हुए बोले—"हाँ, हाँ, ठीक है, मैं भूल रहा था। आपकी अर्जी बारह पेज की थी।"

"तो आप उसे साद्यन्त पढ़ गये थे?"

कमिश्नर साहब ने अपने मित्रों की ओर संकेत करके कहा—"अकेले मैं ही ने नहीं पढ़ा था बल्कि इन लोगों कोभी

लेंगे। आप मनेजरी के पचडे मे न पडिये। मनेजरी कुछ हो तो नौकरी ही है पर इस तरह आप सोलहों आने के मालिक हो जाते हैं। कुवेरगढ बहुत वडी स्टेट है। मैं चाहता हूँ कि आप ही वहाँ के उत्तराधिकारी हो।"

मैंने कमिश्नर साहब के पैर चूमकर इस ईश्वरोपम दया के लिये उन्हे धन्यवाद दिया और हँसी खुशी घर लौट आया। चार महीने बीत चुके हैं। अपनी खुराक मैंने वहुत कम कर दी है। मेरा वजन बराबर घटता जा रहा है यदि इस कमजोराकी ने जीता छोड दिया तो अब कुछ ही दिनो मे इतना हल्का हो जाऊँगा कि राजा कुबेरगढ को कौन कहे खुद मेरी स्त्री ही मुझे गोद ले सकेगी।

काशी लौटने पर लोगों ने पूछा कि लखनऊ क्यो गये थे। मैंने कहा—'हजामत बनवाने'। प० मोतीलाल नेहरू के कपडे किसी समय पैरिस में धुला करते थे। अगर मेरी हजामत बराबर लखनऊ मे बना करे तो क्या हर्ज है।

"दीनबन्धो ! आप पुलीस की रिपोर्ट मँगाकर देख लीजिये। एक बार एक महाजन के बाग में किसी मशहूर तवायफ का नाच हो रहा था। नौकरों ने मुझे फाटक से नहीं घुसने दिया, अत मुझे चहारदीवारी डाँककर भीतर जाना पड़ा। मैं छिपकर नाच देख रहा था कि पकड़ा गया, पुलीस के हवाले किया गया और दस रुपया जुर्माना देना पड़ा। इसी से साबित होता है कि मेरा नाच-मुजरे का शौक कितना बढ़ा-चढ़ा है।"

मेरे इन उत्तरों से कमिश्नर साहब की आँखे खुल गयी। उन्होंने कहा—"इतने गुणो के रहते हुए आप एक साधारण सी जगह के लिये अर्जी लगाये बैठे हैं। आप मेरी एक राय मानियेगा ?"

"प्रभो ! आपकी राय न मानूँगा तो किसकी राय मानूँगा।"

"अच्छा तो आप थोड़े दिन और सब्र कीजिये। आपने राजा कुबेरगढ का नाम सुना होगा। उन्हें कोई आद-औलाद नहीं है और वे शीघ्र ही किसी को गोद लेनेवाले हैं। आप जरा भारी हैं, आपको वे गोद न ले सकेंगे। आप खाना-पीना बिल्कुल छोड़ दीजिये, या एक दम से कम कर दीजिए, जिसमे आप हल्के हो जायँ और राजा साहब आपको आसानी से गोद में उठा सके। तब मैं आपकी सिफारिश कर दूँगा और राजा कुबेरगढ आप ही को गोद ले

के लिये खड़े हुए। हम लोगों ने करतल-ध्वनि की। लाला मल्लूमल ने करतल-ध्वनि के पर्याय में अपने जूते खटखटाये—इसलिये कि उनके हाथ फँसे हुए थे, वे मूँगफली छीलकर खा रहे थे।

झाऊलाल ने कहना शुरू किया—"सज्जनो! भारत एक बड़ा देश है, और इस बड़े देश में बहुत से बड़े आदमी हैं। उन बड़े आदमियों के बड़े भाग से बड़ा दिन ऐसा बड़ा त्योहार आता है। इसी बड़े दिन की दुम में नया साल भी नत्थी रहता है, जिससे बड़े दिन का बड़प्पन और भी बढ़ जाता है। बड़ी-बड़ी उपाधियाँ मिलती हैं—बड़े आदमियों को। बड़ी-बड़ी डालियाँ मिलती हैं—बड़े साहबों को। और, बड़ी-बड़ी छुट्टियाँ मिलती हैं—स्कूली लौंडों और सरकारी अहलकारों को।

"इसी बड़े दिन का ज़िक्र है। सुबह छ बजे का वक्त था। रजाई के भीतर अभी रात ही थी, पर बाहर सबेरा हो गया था। मैंने हिम्मत करके एक उँगली रजाई के बाहर निकाली। पता चला कि बाहर साइबेरिया की सर्दी पड़ रही है। मैंने झट उँगली भीतर खींच ली, और करवट बदलकर फिर सो रहा। कुछ ही देर सो सका हूँगा कि मेरे होनेवाले बच्चों की माँ ने मेरे 'काकपक्ष' को पकड़कर एक झटका दिया। मुझे जगाने के लिये वह अक्सर यही तरीका अख्तियार करती है। मैंने झल्लाकर पूछा—'अजी यह क्या कर रही हो?'

वडा दिन

[१]

आज क्लब में लाला झाऊलाल के पधारने पर वडे मनुहार और आवभगत के साथ हम लोगों ने उनका स्वागत किया। क्लब के अध्यक्ष प० जीटवहादुर शर्मा ने टीन की डिबिया में रखकर एक आँजन उन्हें Present किया, और कहा कि उल्लू की आँख जलाकर मैंने यह आँजन बनाया है, इसे लगाइयेगा तो अँधेरे में आपको सूझ पड़ेगा।

लाला झाऊलाल हमारे क्लब के एक सम्मान्य सदस्य हैं, पर अब उन्हें सदस्यता से इस्तीफा देना पडेगा। इसी वडे दिन में उन्होंने न-जाने किस तिकडम से स्थानीय कलेक्टर साहब को प्रसन्न कर लिया। फलत उन्हें कोई नौकरी मिल गई और वे वेकारी के दलदल से निकल भागे। यही कारण है कि अब वे क्लब के सदस्य नहीं रह सकते। हमारे क्लब के सदस्य केवल वे ही हो सकते हैं, जिन्हे ससार में कोई काम-धन्धा न हो।

'मुझे नौकरी कैसे मिली'—इस विषय पर झाऊलाल का आज क्लब में भाषण होगा। आगत-स्वागत के वाद वे बोले

के लिये खड़े हुए। हम लोगों ने करतल-ध्वनि की। लाला मल्लूमल ने करतल-ध्वनि के पर्याय में अपने जूते खटखटाये—इसलिये कि उनके हाथ फँसे हुए थे, वे मूँगफली छीलकर खा रहे थे।

झाऊलाल ने कहना शुरू किया—"सज्जनो ! भारत एक बड़ा देश है, और इस बड़े देश में बहुत से बड़े आदमी हैं। उन बड़े आदमियों के बड़े भाग से बड़ा दिन ऐसा बड़ा त्योहार आता है। इसी बड़े दिन की दुम मे नया साल भी नत्थी रहता है, जिससे बड़े दिन का बड़प्पन और भी बढ जाता है। बड़ी-बड़ी उपाधियाँ मिलती हैं—बड़े आदमियों को। बड़ी-बड़ी डालियाँ मिलती हैं—बड़े साहबों को। और, बड़ी-बड़ी छुट्टियाँ मिलती हैं–स्कूली लौंडों और सरकारी अहलकारों को।

"इसी बड़े दिन का जिक्र है। सुबह छ बजे का वक्त था। रजाई के भीतर अभी रात ही थी, पर बाहर सवेरा हो गया था। मैंने हिम्मत करके एक उँगली रजाई के बाहर निकाली। पता चला कि बाहर साइबीरिया की सर्दी पड रही है। मैंने झट उँगली भीतर खींच ली, और करवट बदलकर फिर सो रहा। कुछ ही देर सो सका हूँगा कि मेरे होनेवाले बच्चों की माँ ने मेरे 'काकपच्छ' को पकडकर एक झटका दिया। मुझे जगाने के लिये वह अक्सर यही तरीका अख्तियार करती है। मैंने झल्लाकर पूछा—'अजी यह क्या कर रही हो ?'

बड़ा दिन

[१]

आज क्लब मे लाला झाऊलाल के पधारने पर बड़े मनुहार और आवभगत के साथ हम लोगो ने उनका स्वागत किया। क्लब के अध्यक्ष प० जीटबहादुर शर्मा ने टीन की डिबिया में रखकर एक आँजन उन्हें Piesont किया, और कहा कि उल्लू की आँख जलाकर मैंने यह आँजन बनाया है, इसे लगाइयेगा तो अँधेरे मे आपको सूझ पड़ेगा।

लाला झाऊलाल हमारे क्लब के एक सम्मान्य सदस्य हैं, पर अब उन्हे सदस्यता से इस्तीफा देना पड़ेगा। इसी बड़े दिन मे उन्होंने न-जाने किस तिकड़म से स्थानीय कलेक्टर साहब को प्रसन्न कर लिया। फलत उन्हे कोई नौकरी मिल गई, और वे बेकारी के दलदल से निकल भागे। यही कारण है कि अब वे क्लब के सदस्य नही रह सकते। हमारे क्लब के सदस्य केवल वे ही हो सकते हैं, जिन्हे ससार मे कोई काम-धन्धा न हो।

'मुझे नौकरी कैसे मिली'—इस विषय पर झाऊलाल का आज क्लब में भाषण होगा। आगत-स्वागत के बाद वे बोलने

के लिये खड़े हुए। हम लोगों ने करतल-ध्वनि की। लाला मल्लूमल ने करतल-ध्वनि के पर्याय में अपने जूते खटखटाये—इसलिये कि उनके हाथ फँसे हुए थे, वे मूँगफली छीलकर खा रहे थे।

भाऊलाल ने कहना शुरू किया—"सज्जनो! भारत एक बड़ा देश है, और इस बड़े देश में बहुत से बड़े आदमी हैं। उन बड़े आदमियों के बड़े भाग से बड़ा दिन ऐसा बड़ा त्योहार आता है। इसी बड़े दिन की दुम में नया साल भी नत्थी रहता है, जिससे बड़े दिन का बड़प्पन और भी बढ़ जाता है। बड़ी-बड़ी उपाधियाँ मिलती हैं—बड़े आदमियों को। बड़ी-बड़ी डालियाँ मिलती हैं—बड़े साहबों को। और, बड़ी-बड़ी छुट्टियाँ मिलती हैं—स्कूली लौंडों और सरकारी अहलकारों को।

"इसी बड़े दिन का जिक्र है। सुबह छ बजे का वक्त था। रजाई के भीतर अभी रात ही थी, पर बाहर सवेरा हो गया था। मैंने हिम्मत करके एक उँगली रजाई के बाहर निकाली। पता चला कि बाहर साइबीरिया की सर्दी पड़ रही है। मैंने झट उँगली भीतर खींच ली, और करवट बदलकर फिर सो रहा। कुछ ही देर सो सका हूँगा कि मेरे होनेवाले बच्चों की माँ ने मेरे 'काकपक्ष' को पकड़कर एक झटका दिया। मुझे जगाने के लिये वह अक्सर यही तरीका अख्तियार करती है। मैंने झल्लाकर पूछा—'अजी यह क्या कर रही हो?'

'उठिये सवेरा हुआ।'

'तङ्ग न करो, पडे रहने दो दनदाये हुए।'

'नहीं, अब उठिये, लोग कहते हैं कि ईश्वर प्राणिमात्र को सवेरे चारा बाँटता है, आप नौ बजे सोकर उठते हैं, इसी से अभी तक न कोई रोजी है न रोजगार।'

'अभी रात मे सोते वक्त लेक्चर दे चुकी हो। क्या सवेरे के लिये इतना कलेवा रख छोडा था? रोजी-रोजगार तो बारहो महीने के लिये है, रजाई तो सिर्फ़ चार ही महीने के लिये है न?'

'मैं रजाई खींच लेती हूँ, तब तो उठियेगा।'

'चाहे मेरी खाल खींच लो पर मैं रजाई न खींचने दूँगा।'

'मैं आपको अब सोने न दूँगी, उठिये, आज बडा दिन है।'

'तो इसमें मेरा क्या कसूर है कि मुझे जाडे-पाले में सता रही हो?'

'अब आज से रात छोटी होने लगेगी। आपको अब कम सोने की आदत डालनी चाहिये।'

'अच्छा, कल से आदत डालूँगा, आज ईश्वर के नाम पर पडे रहने दो।'

'कल कभी नहीं आता।'

'कल लेने देोगी, तब न कल आवेगा।'

'आप उठते हैं, या मैं गुदगुदाना शुरू करूँ?'

'गुदगुदाओ, मैं हँस लूँगा, ँसने के बाद नींद अच्छी आती है।'

'अच्छा मैं चिकोटी काटूँगी।'

'मैं ऊनी कमीज पहिरे हुए हूँ।'

"इतना कहते देर न हुई कि मेरी जाँघ पर एक चिनगारी टपक पड़ी।—उसने आखिर चिकोटी काट ही ली।—सिर्फ यह साबित करने के लिये कि ऊनी कमीज सारे शरीर की रक्षा नहीं कर सकती। मैंने आह-ऊह करते हुए कहा—'अजी यह क्या कर रही हो? कमर के नीचे तो दुश्मन भी वार नहीं करता।'

"उसने हँसते हुए कहा— मैं आपको उठा ही कर छोडूँगी। आपको नौ बजे दिन तक सोने की आदत छोड़नी ही होगी।'

'खुद तो उठने का नाम नहीं ले रही हो, मुझे व्यर्थ उठा रही हो।'

'मैं जल्दी उठकर क्या करूँगी? मुझे दरवाजे-दरवाजे ठोकर खाकर नौकरी तो तलाश करनी है नहीं।'

"मेरी स्त्री छूने मे तो बड़ी मुलायम है, पर उसकी जीभ पर परमात्मा ने पैनी छुरी रख दी है। कभी-कभी ऐसी तीखी-कड़वी बाते करती है कि एँडी से चोटी तक लुत्ती लग जाती है। लाचार, मुझे चारपाई से उठना पड़ा—'रुई और दुई' का मोह छोड़ना पड़ा। जब अपना हम-विस्तर ही विस्तरे पर कल न लेने दे, तो कोई क्या कर सकता है? मैं रजाई

से निकलकर खाट के सरहाने खडा हो गया, और बिस्तरे की ओर हसरत भरी निगाहों से देखने लगा। गजब की सर्दी पड रही थी। थोड़ी ही देर मे मेरी नाक की नोक और कान के पल्ले सुर्ख हो गये। मुझे क्रोध आ रहा था, पर मैं दॉत पीसने से भी लाचार था, क्योंकि दाँत तो मजीरा बजाने मे मशगूल थे। जिस प्रकार मृत्यु के उपरान्त आत्मा को मृत देह का मोह छोडकर भूत-योनि मे जाना पडता है, उसी प्रकार मुझे रजाई का मोह छोडकर स्नान गृह मे जाना पडा।

"स्नान करते समय मुझे एक अमूल्य बात सूझी, जिसे मैं हिन्दूसभा को बिना मूल्य भेंट करता हूँ। मेरा खयाल है कि हिन्दूसभा यदि पता लगाये, तो यह सिद्ध हो जाय कि गर्मी की अपेक्षा जाडे मे अधिक हिन्दू—मुसलमान होते हैं, सिर्फ इसलिये कि मुसलमान हो जाने पर यदि जाडे-भर आप स्नान न करें, तो कोई आपकी ओर अँगुली नहीं उठा सकता। मुसलमान हो जाने पर यह आपकी इच्छा पर निर्भर रहेगा, और मानव-समाज पर एक प्रकार का एहसान होगा, यदि तुर्की टोपी देने के पूर्व आप सिर्फ अपना मुँह और हाथ साबुन से माँज लें। हिन्दुओं में ईश्वर का नाम लेना हो, तो पहले स्नान कर लेना अत्यन्त आवश्यक समझा जाता है। वहाँ दो छटाँक पानी से हाथ पाँव की अँगुलियाँ धोकर अल्लाह-ताला से निपटने के लिये खडे हो जाइये। जूतों के खो जाने का डर हो, तो उन्हें अचकन की जेबों में डाल लीजिये। यह

एक याद रखने की बात है कि हिन्दू अगर स्नान-ध्यान के साथ ईश्वर की बाकायद पूजा करते हैं, तो हमारे मुसलमान भाई डण्ड-बैठक के साथ उसकी बाकवायद परस्तिश करते हैं।

"सुबह का उठना मुझे खल तो जरूर गया, पर एक बार उठ बैठा, तो यह इच्छा हुई कि चलो, थोड़ी देर बहरी तरफ टहल आऊँ। मैंने अपना ओवरकोट चढ़ाया, और टहलने के लिये निकल पड़ा। सिविल-लाइन्स की सदर सड़क से होता हुआ मैं जाने लगा। थोड़ा ही दूर गया हूँगा कि पीछे से एक गाड़ी धड़धड़ाती हुई आई। मैंने घूमकर देखा, तो उसमें बाबू मेवाराम बैठे हुए थे। मेवारामजी शहर के एक महाजन हैं। किसी समय ये मेरे सहपाठी थे। मुझे देखकर उन्होंने गाड़ी रोक दी, और पूछा—किधर जा रहे हो?

'जिधर ही निकल जाऊँ, अपनी नकेल तो अपने हाथ में है।'

'तब आ जाव गाड़ी में, गप-शप होती चले।'

"सवारी के रहते हुए पैदल चलना बेवकूफी में दाखिल है। मैं झट गाड़ी पर सवार हो लिया, और उनसे पूछा—'तुम कहा जाते हो?'

'ठाकुरद्वारे जा रहा हूँ।'

'ठाकुरद्वारे? सिविल-लाइन्स में तो कोई भी ठाकुरद्वारा नहीं है।'

'है कैसे नहीं? शहर का सबसे बड़ा ठाकुरद्वारा तो इधर ही है। ठाकुरद्वारे से मेरा मतलब है कलेक्टर साहब के बँगले से।'

मैं हँसकर बोला—'तुम्हें कलेक्टर साहब से क्या सरोकार? क्या अब रायबहादुरी की चाट लगी है?'

'अजी नहीं, मैं ऐसा बेवकूफ नहीं हूँ। योंही जा रहा हूँ। आज बड़ा दिन है न, कभी-कभी साहब से मिलते रहना अच्छा होता है। मुहल्लेवालों पर रोब बना रहता है। लोग समझते हैं कि ये कलेक्टर साहब के मिलनेवालों में से हैं। मुझे भी जिस दिन उनसे मिलने आना होता है, उस दिन दो घण्टे पहले ही से कोठी के सामने गाडी खडी करा देता हूँ, साईस-कोचवान और नौकर-चाकर सब सिखाये-पढ़ाये रहते हैं, बिना पूछे ही लोगों को बतलाते रहते हैं कि आज हमारे मालिक कलेक्टर साहब से मिलने जा रहे हैं।'

"थोडी देर में गाडी बँगले पर पहुँच गई। मैं फाटक पर खड़े खडे बाग और बँगले की सुन्दरता निरखने लगा। कैसा रमणीय स्थान था! सुन्दर-सुन्दर विलायती फूलों से क्यारियाँ फूली नहीं समाती थीं—पैन्सी, नास्टर्शियम, फ्लोक्स, पेटूनियाँ इत्यादि से सारा बाग जगर-मगर कर रहा था। कानवुलवुली और बाग-चमेली आदि लताओं ने बँगले की दीवालों पर हरे मखमल का लिहाफ डाल दिया था, क्रोटन और फ़र्न्स के बोझ से बड़े-बडे गमले फटे पडते थे। 'लान' की सफाई और सुथराई देखते बनती थी। पोर्टिको के ठीक सामने एक फव्वारा था, जिसमें सङ्गमर्मर का राजहंस चोंच से पानी उछाल रहा था। यह सब देखकर एक महा गँवार

भी समझ सकता था कि जरूर इस बँगले में कोई गरीब सिविलियन रहता है, जो बेचारा केवल परार्थ और परमार्थ के विचार से, स्वार्थ और स्वदेश को त्यागकर, परदेश और पराये लोगों में रहकर, अपवाद और अपकीर्ति सहकर, सदुद्देश्य और सदाकाङ्क्षा से प्रेरित होकर, महज अनरेरियम-स्वरूप स्वल्प वेतन पर, खुद्दा-चुन्नी खाकर, हम वर्बर भारतीयों को सभ्य बनाने के लिये आठो पहर और चौबीसों घण्टे जाँगर तोड़ रहा है।

"बँगले पर आज अच्छी चहल-पहल है। शहर के अधिकांश रईस गाड़ी, मोटर और ताँगों से उतरकर बँगले के सामने गश्त लगा रहे हैं, या पोर्टिको के नीचे खड़े हैं। इन सजे-धजे रईसों की भीड़ देखकर मेरी तबीयत फड़क उठी—ऐसे शहर में रहना भी एक गर्व की बात है, जहाँ इस क़दर बहुसंख्यक रईस हों, सो शहर के सब रईस यहाँ थे भी नहीं। उन रईसों का कोई जिक्र ही नहीं, जो किसी रईस के सगे-सम्बन्धी होने के कारण, या उनके साथ मेल-मुलाक़ात रखने के कारण, या केवल उनके पड़ोस में बसने के कारण, रईस कहलाने का दावा रखते हैं।

"इतने लोग जो साहब के मिलने के लिये एकत्र थे, सभी के चेहरे पर आतङ्क था, सभी चिन्तित, उद्विग्न और सशङ्क थे। सभी यह सोच रहे थे कि देखें साहब कब मिलते हैं, और मिलने पर बातें कैसी करते हैं। लोग पोर्टिको के नीचे

जूते का चर्र-मर्र दबाकर हिलते-डोलते थे। किसी को खाँसना होता था, तो वह बिना खाँसे ही खाँसने की हाजत दूर करने की विचित्र कोशिशें करता था। साहब के अर्दली को लोग देख लेते थे, तो बड़े आदर से उसकी ओर अँगुली उठाते थे, और एक दूसरे से कहते थे—देखो, यही साहब का अर्दली है। उसको देखकर इन लोगो के दिल मे यह भाव पैदा होता था कि यह कितना भाग्यशाली आदमी है! जो कलेक्टर साहब हम लोगों से घण्टों प्रतीक्षा कराते हैं, घण्टों प्रतीक्षा कराने पर भी कभी-कभी नहीं मिलते, मिलने पर भी अक्सर बैठने के लिये कुर्सी नहीं देते, और इतना सब करने पर भी कभी-कभी डाँट बैठते हैं, वही कलेक्टर साहब इस शख्स को नाम लेकर पुकारते हैं, इसके हाथ से ओवरकोट पहिरते हैं, और क्लब से शराब पीकर लौटने पर इसी के कन्धे पर हाथ रखकर गाड़ी से उतरते हैं। अर्दली भी अपनी गौरव-गरिमा से अनभिज्ञ न था। इतना वह जानता था कि वही साहब का पण्डा है—बिना उसको प्रसन्न किये कोई भी साहब का दर्शन नहीं पा सकता, जब-जब वह बाहर आता था, तब तब कुछ लोग उसे बड़े आदर से हाथ पकड़कर अलग लिवा जाते थे, और उसके एक हाथ मे अपना कार्ड और दूसरे मे कुछ गुप्त दान रख देते थे।"

'इसी अर्दली के ज़बानी यह पता चला कि साहब जब सोकर उठे थे, तब तो बड़े खुश जान पड़ते थे, नौकरों को हँस-

हँसकर हाम-फूल पुकारते थे, पर अभी कुछ ही देर हुई, उनका स्वभाव एकाएक पलट गया, यहाँ तक कि अपने खानसामा को उन्होंने शू-हार्न फेंककर मारा, जो सयोग से उसे लगा नहीं। समाचार-पत्रों की भाषा में 'इस सनसनी पैदा करनेवाली बात को' सुनकर लोग दहल उठे। दहल उठने की बात भी थी। जो कलेक्टर अपने खानसामा पर शू-हार्न फेंक सकता है, वह शहर के किसी रईस पर 'शू' भी फेंक सकता है। एक सज्जन ने अर्दली से पूछा—'ठीक-ठीक बताओ, इस समय साहब के स्वभाव में क्या परिवर्तन पाते हो ?'

'यही कि मिजाज मे कुछ पोटासपन आ गया है।'

'पोटासपन क्या ?'

'बात बात मे पोटास की तरह चिटखते हैं।'

'यानी कुछ झल्लाये हुए हैं ?'

'हाँ, बस यही समझिये। बातों में कुछ झनक-पटक है, और मिजाज मे कुछ किरकिरापन है। कुछ झल्लायें हुए हैं, और कुछ भिन्नाये हुए हैं।'

''जब इस प्रश्नोत्तर से साहब के स्वभाव का ताप-मान दशमलव तक निर्धारित हो गया, तब लोगों को स्वभावतः इस आकस्मिक परिवर्त्तन का कारण जानने की उत्सुकता हुई। अर्दली ने बहुत 'चिरौरी' कराने पर बतलाया कि साहब गर्म पानी के टब में से स्नान करके निकले, तो उनका पैर फर्श पर पड़े हुए एक साबुन की बट्टी पर पड़ गया, और वे फिसलकर ठण्डे

पानी के टब मे जा गिरे। कहीं चोट-चपेट तो नहीं लगी, पर कडकड़ाते जाडे में सुबह के वक्त वर्फ से ठण्डे पानी में अचानक डुबकी मार बैठना किस चोट से कम है? अगर इस घटना से उनके मिजाज मे, बकौल अर्दली के, कुछ 'पोटासपन' आ गया, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?

[२]

"किसी ने सच कहा है कि सयोगी बात योगी भी नही जानते। कौन जानता था कि आज ऐन क्रिसमस के दिन कलेक्टर साहब को स्नान करते समय एक भींगे हुए साबुन पर सवार होकर गर्म पानी के टब से ठण्डे पानी के टब तक बाम्बे मेल की तेजी से सफर करना पडेगा?

"कहाँ तो पचीसों सजेधजे रईस पोर्टिको के नीचे साहब के दर्शन की लालसा से लिह्वी घोडों की तरह नाच रहे हैं, और कहाँ इस बदतमीज साबुन ने साहब के स्वभाव मे असमय पोटासपन का पुट डाल दिया। लोग एक स्वर से उस साबुन को कोसने लगे। एक सज्जन ने मेरे सुनने में कहा—'बुरा हो इस कम्बख्त साबुन का। ईश्वर करे उस जन्म में किसी धोबिया साबुन के कुल मे इसे जन्म लेना पडे।'

"कुछ लोगों ने इस समय साहब से मिलने में अपनी खैरियत न समझकर उल्टे पाँव लौट जाने की ठान ली। जो अपने इष्टदेवों को स्मरण करके डटे रह गये, उनकी भी हिम्मत

अब धीरे-धीरे स्खलित होने लगी। वास्तव मे साहब से इस समय मिलना हँसी-खेल नहीं था। एक तो अँगरेज योंही नकचढे होते हैं, फिर अँगरेज कैसा कि कलेक्टर! और वह भी अपने साधारण Mood मे नहीं, बल्कि बुरी तरह झल्लाया हुआ! न मिलना भी ठीक नहीं है—मुमकिन है, साहब को यह ख्याल हो कि फलाँ शख्स क्रिसमस के दिन मुझे सलाम करने नहीं आया, और मिलने में यह आफत है कि चिड-चिडाये तो हैं ही, न जाने कैसा सयोग आन पडे, कुछ कह-सुन दें, Stupid ही पुकार बैठें, या यही हुक्म दे निकले कि कान पकडकर उठो बैठो, तो कोई उनका क्या कर लेगा?

'लोग इसी उधेड-बुन में पडे हुए थे कि रायबहादुर लाला मलूकदास जोडी से उतरकर पोर्टिको की ओर आते हुए देख पडे। इनको देखकर लोगों की जान में जान आई। शहर में ऐसा मशहूर है कि कलेक्टर साहब रायबहादुर लाला मलूकदास को बहुत मानते हैं। अगर सबके पहिले यही साहब से मिलने के लिये चले जायँ, तो बहुत सम्भव है कि साहब की खीझ, रीझ के रूप में, बदल जाय, और तब बाद में मिलने जानेवालों के लिये रास्ता भी साफ हो जाय, पर डर इस बात का था कि लाला मलूकदास को अगर मालूम हो जायगा कि साहब इस वक्त कुछ बिगडे हुए हैं, तो शायद सबके पहिले उनके पास जाने में वे हिचकें, इसलिये उन पर किसी ने साबुनवाली दुर्घटना का हाल प्रकट ही नहीं किया,

और उधर लोगों ने अर्दली को सिखा दिया कि साहब receive करना शुरू करें, तो वह लाला मलूकदास ही से श्रीगणेश करे।

"रायबहादुर लाला मलूकदास यहाँ के एक बहुत बड़े रईस, जमींदार और बैङ्कर हैं। साथ ही, अँगरेजी फैशन के पक्के पुजारी भी हैं। नित्य टेबुल पर काँटे-चम्मच से अपने को भोग लगाते हैं। सुबह जलपान नहीं माँगते, छोटा हाजरी माँगते हैं। मुँह में सिगार रखकर बात करने का अभ्यास भी इन्होंने कर लिया है। सदा सूट ही पहनते हैं, सो भी सिर्फ अँगरेज दर्जियों के सिले हुए। अपनी बीबी को 'डारलिङ्ग' पुकारते हैं। रोज सबेरे बड़े साहबों की तरह लेटे-लेटे 'शेव' कराते हैं। हर साल सैकड़ों रुपये सिर्फ 'पोमेड' और 'लवेण्डर' में खर्च कर डालते हैं।

'एक बार रायबहादुर मलूकदासजी ने अपने इलाके मे किसी शिवालय का कँगूरा कटवा डाला था, इसलिये कि किसी अँगरेज इञ्जीनियर की राय में वह कँगूरा उनके बँगले का View खराब कर रहा था। जेनरल-डायर-फण्ड में पाँच हज़ार रुपये का दान देकर आपने रायबहादुरी ख़रीदी थी। महात्माजी के जेल जाने पर आपने वायसराय के पास बधाई का तार भी भेजा था।

"इस अन्तिम बात से ही आप जान गये होंगे कि लाला मलूकदासजी असहयोग के नाम से, और असहयोगियों की सूरत से, कितना चिढ़ते हैं। उनके इसी एक गुण पर मुग्ध

होकर स्थानीय लिबरल-पार्टी ने उन्हें अपना नेता चुन लिया है। तीन वर्ष तक रायबहादुर लाला मलूकदासजी प्रान्तीय कौंसिल के सदस्य भी रह चुके हैं, और तीन वर्ष में आपने सिर्फ यही एक प्रस्ताव कौंसिल के सामने रक्खा कि प्रान्तीय सरकार सेन्ट्रल-गवर्नमेण्ट से सिफारिश करती है कि रायबहादुरी का खिताब Hereditary (मौरूसी) बना दिया जाय।

"सारी माडरेट-पार्टी ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया। एक माडरेट-सदस्य ने यहाँ तक कह डाला कि वैध उपायों द्वारा स्वराज्य-प्राप्ति की पहली सीढ़ी यही होगी कि रायबहादुरी की उपाधि पुश्त-दर-पुश्त के लिये टिकाऊ बना दी जाय, पर तब भी स्वराजी मेम्बरों के विरोध करने पर, जिसके लिये लिबरल-पत्रों ने गला फाडकर उन्हे देशद्रोही करार दिया, अन्त में प्रस्ताव बहुमत से गिर ही गया। सुना जाता है कि रायबहादुर लाला मलूकदास ने और उनके जेठे लडके ने इस अफसोस मे दो दिन तक अन्न-जल छोड़ दिया था।

"खैर, साहब अपने भक्तों को दर्शन देने के लिये तैयार होकर जब बैठे, तब अर्दली ने सबके पहिले इन्हीं को उनके आगे पेश किया। रायबहादुर लाला मलूकदासजी ने फौरन भाँप लिया कि आज मामला कुछ गडबड है—क्योंकि और रोज तो साहब मुस्कराकर स्वागत करते थे, पर आज इस तरह ऐंठे रहे, मानों ओदा चमडा धूप में सूख रहा हो।

'लाला मलूकदासजी बड़े अदब के साथ साहब के सामने खड़े हुए—जैसे गाँगू तेली राजा भोज के सामने खड़ा हो। साहब ने अतीव कृपा करके इनकी ओर आँख उठाई, और इन्होंने अतिशय नम्रता के साथ कहा—'Good Morning, Sir! Wish you a very happy Christmas'

"साहब ने इसका कोई उत्तर न दिया। ऐसा जान पड़ा कि इस जन्म मे साहब इसका कोई उत्तर देंगे भी नहीं, पर कुछ देर मे शिष्टता और शालीनता के न जाने किस पुराने सस्कार ने उनके हृदय मे जोर मारा और उन्होंने फूटे हुए झञ्झर के स्वर मे कहा—'Thanks', पर इस 'थैंक्स' के अन्तर मे वही भाव टँका हुआ था जिस भाव से एक लखपती किसी भिखमङ्गे के आगे एक पैसा फेक देता है।

"साहब ने एक कुर्सी की ओर इशारा किया। लाला मलूकदासजी उस कुर्सी के एक-बटे-दसवे हिस्से पर बैठ गये, बाकी कुर्सी पर मानो उनके लिये खड़ी-खड़ी कीले जड़ी हुई थी। अपनी सबसे मीठी मुसकान को—जिसे खास-खास मौकों के लिये वे 'रिजर्व' रखते हैं—अपने चेहरे पर बटोर कर बोले—'Sir इस साल मैं एक नई बात देख रहा हूँ। बाहर आपसे मिलने के लिये बहुत लोग खड़े हैं। उनमें कुछ ऐसे व्यक्ति भी हैं, जो अभी पर-साल तक खद्दर पहिरकर शहर में असहयोगी नेता बने हुए घूमते थे। मुझे यह देखकर नेहायत खुशी हुई कि ये लोग फिर रास्ते पर आ गये। सुबह के भूले आखिर शाम को घर लौट ही आये।'

"और किसी समय साहब से इस तरह की बात किसी ने की होती, तो वे बड़े प्रसन्न हुए होते, पर इस समय तो उनका दिमाग दूसरे ही 'कोठे' मे था। उन्हे मलूकदास की गुफ्तगू जरा भी न रुची। माथा सिकोड़कर बोले—'इसमे आपके खुश होने की कौन सी बात है ? मैं अँगरेज हूँ, अगर मुझे इस बात से खुशी हो तो ठीक भी है।'

' लाला मलूकदास ने कहा—'मुझे खुशी इस बात की है Sir, कि अब इन्हीं बातो से हमारे माडरेट-पार्टी की नीति की बुद्धिमत्ता प्रमाणित होने लगी है। हम लोगों ने असहयोग को ठुकराकर गवर्नमेण्ट का साथ दिया, यह बड़ी समझदारी का काम किया।'

"लाला मलूकदास ने समझा था कि उनका आखिरी जुमला साहब के दिमाग पर गुलाबजल का काम करेगा, पर साहब तो नाराज होने पर तुले बैठे थे। मसल मशहूर है कि किसी को मेहरी छोड़ना होता है, तो वह कहता है कि साग मे हल्दी क्यों नहीं डाली गयी। यही हाल साहब का था। बोले—'आप मुझसे बार-बार यह क्यों कहा करते हैं कि आपने और आपकी पार्टी ने असहयोग के आपत्-काल मे सरकार का साथ दिया ? आप लोग सरकार का साथ न देते तो और करते क्या ? जेल के 'पनहियाभद्दर' के लिये तैयार थे, या योंही असहयोग का साथ देते ? जाँते में जोत दिये गये होते, मखमल का अंगना उतरवा लिया गया होता,

चक्की पीसते-पीसते रीढ़ दुहर गई होती। देह में जूस होता, तब तो असहयोग का साथ देते ?'

"रायबहादुर लाला मलूकदास ने देख लिया कि इस समय हवा उल्टी वह रही है—साहब तो आज छींकते नाक काट रहे हैं। यह हाल देखकर बेचारे सन्न मार गये, और टुकुर-टुकुर साहब का मुँह निहारने लगे।

"साहब फिर बोले—'आप लोग समझते हैं कि असहयोग के जमाने में सरकार की मदद करके अपने एहसान के बोझ से आपने उसे दबा लिया है, पर आपका खयाल गलत है। सरकार आप लोगों की नस-नस पहचानती है। बिना हाथ-पाँव डुलाये ही अगर स्वराज मिल जाय, और उस स्वराज में आपकी पार्टीवालों को मिनिस्टर्स और गवर्नर्स के पद दे दिये जायँ, तो आपको बड़ी प्रसन्नता हो, क्यों यही बात न ? पर हम अँगरेज बेवकूफ नहीं हैं, बेवकूफ होते, तो अब से कभी आपके देशवाले हमारी हड्डियों का चूना बनाकर पान के साथ चाट गये होते। हम लोगों को असहयोगियों का दमन करना पड़ा, पर हृदय से हम उनका आदर करते थे। लिबरलों की हमें पीठ ठोकनी पड़ी, पर हृदय से हम उनसे घृणा करते थे। असहयोगी मार्गभ्रष्ट वा भ्रान्त भले ही रहे हों, पर आप लोगों की तरह वे कायर नहीं थे।'

"साहब ने यह सब अँगरेजी में कहा था, मैंने उसका हिन्दीभावार्थ आप लोगों को सुना दिया है। वे अभी और

कुछ कहने जा रहे थे कि पीछे से किसी की आहट जान पड़ी। उन्होंने गर्दन मोड़कर देखा, तो पीछे महामहोपाध्याय प० धर्मध्वज शास्त्री को खड़ा पाया।

[३]

"हमारे महामहोपाध्याय प० धर्मध्वजजी शास्त्री उन लोगों में से हैं जो अँगरेजों को देवलोक के जीव समझते हैं। किसी अँगरेज की दयादृष्टि को वे पूर्वजन्म की तपस्या का फल मानते हैं। बड़े दिन में जिस प्रेम से शास्त्रीजी अँगरेजों को डालियाँ देते हैं उतने प्रेम से पितृ-पक्ष में अपने पितरों को पिण्ड नहीं देते। साधारण से साधारण अँगरेज को भी देखकर शास्त्रीजी की बस उसके आगे पट पड़ जाने की इच्छा होती है।

"कलेक्टर साहब तो शास्त्रीजी के आराध्य देव ही हैं। उनसे यदि व्यवस्था माँगी जाय तो शायद जिलाधीश का स्थान वे जगदीश से भी ऊँचा बतलावें। उनकी चले तो जहाँ-जहाँ कलेक्टर साहब चरण रक्खें तहाँ-तहाँ वे तीर्थ कायम कर दें। यदि कलेक्टर साहब उनके मस्तक पर अपने खुर से क्षौर लगा दें तो निश्चय है कि शास्त्रीजी उसे अपने भाग्योदय का लक्षण समझेंगे।

"रायबहादुर लाला मलूकदास ने ज्योंही साहब से मिलने के लिये बँगले के बरामदे की ओर पयान किया त्योंही महा-महोपाध्याय प० धर्मध्वज शास्त्री घबराये हुए ताँगे से उतरे

और अर्दली से बोले 'भैया! मुझे फौरन साहब के पास ले चलो, कहो तो मैं तुम्हे सौ बार चाचा पुकारूँ, पर किसी तरह अभी—इसी मिनट—साहब से मेरी भेंट करा दो।'

"अर्दली ने कहा कि महाराज, आप जरा सब्र कीजिये, लाला मलूकदासजी अभी साहब के पास पहुँचे ही होंगे, उनको आ जाने दीजिये, तो मैं आपको लिवा चलूँ। पर हमारे शास्त्रीजी जरूरत से ज्याद उजलत मे थे। उन्होने कहा—'अरे नहीं अर्दली साहब! आपको लालै बेटवा हो, मुझे फौरन साहब से मिलाइये। मैं जरा भी नही ठहर सकता, साढे आठ ही बजे तक साहब से मिलने की सायत है, और अब साढे आठ में पॉच ही मिनट की देर है, साढे आठ के बाद तो सूर्य्य के घर में शनि का प्रवेश हो जाता है, जो योग राजा या राजा-तुल्य अन्य व्यक्ति से मिलने के लिये सर्वथा वर्जित है।'

"राजा-तुल्य अन्य व्यक्ति से पण्डितजी का अभिप्राय कले-क्टर साहब ही से था। अर्दली ने बहुत समझाया कि अभी साहब के पास न जाइये, पर महामहोपाध्यायजी वास्तव में महामहोपोंगा थे, उन्होंने एक न सुनी। सायत देखकर आये थे, साढे आठ के पहिले मिलना जरूरी था। अर्दली की मुट्ठी में कुछ चॉदी के छींटे मारकर वे आगे बढे। बरामदे की मोड से उन्होंने देखा कि साहब ने मलूकदास को बैठने का इशारा किया और वे बैठ गये। पण्डितजी यह देखकर भी आगे बढने से अपने को रोक न सके—सूर्य्य के घर मे

शनि के प्रवेश का डर उन्हें सताये हुए था। वे आगे बढते-बढते साहब के बिल्कुल करीब पहुँच गये। साहब लाला मलूकदास को फटकारने में मस्त थे, उन्होंने पण्डितजी को नहीं देखा, और भला मलूकदासजी उन्हें क्या देखते, वे तो मन ही मन सोच रहे थे कि आज सुबह मैं किसका मुह देखकर उठा था। पण्डितजी खडे-खडे सारी बातें सुनते रहे।

थोडी देर बाद जब साहब ने एकाएक पीछे घूमकर देखा तो महामहोपाध्याय पण्डित धर्मध्वज शास्त्री को खडे पाया। उनको देखकर साहब का पित्त खौल उठा। दो सेकेण्ड के लिये तो ऐसा जान पडा कि वे तडपकर पण्डितजी पर छापा मारना ही चाहते हैं। अँगरेजी etiquette के अनुसार यह एक बहुत बडा अपराध माना जाता है—और मानना ठीक भी है—कि जहाँ दो आदमी बातें कर रहे हों वहाँ तीसरा बिना बुलाये पहुँच जाय और पहुँचकर उनकी बातें सुन ले! साहब ने कडककर पूछा—'आप यहाँ कैसे आये? आपको किसने बुलाया था?'

'पण्डितजी की तो थरथरी हिल गई। सामने घडी में साढे आठ बज गया था, लाख जल्दी करने पर भी आखिर सूर्य के घर में शनि का प्रवेश हो ही गया। ऐसे बुरे योग में राजा-तुल्य व्यक्ति से मिलना! सच है, होनी होके रहती है, पण्डितजी मन ही मन ईश्वर को पुकार कर 'त्राहि माम्, त्राहि माम्' कहने लगे।

"साहब ने फिर पूछा—'बोलिये, कुछ जवाब दीजिए, आप यहाँ क्यों आये ? किसने आपको यहाँ आने का हुक्म दिया था ?'

"पण्डितजी बेचारे—एक चुप लाख चुप—क्या जवाब देते ? साहब से सायत का हाल कहते ?

"उधर पण्डितजी की खामोशी से साहब और भी आग-बबूला हो रहे थे, दाँत पीसकर बोले—'आप कुछ जवाब देते हैं या मैं आपको कम्पौण्ड के बाहर निकलवा दूँ ?'

"पण्डितजी ने जवाब देने की कोशिश की, पर जबान तो, ऐसा जान पडता था कि, तालू से सट गयी है। साहब का रौद्र रूप देखकर महामहोपाध्यायजी सोलहो आने 'पिल-पिलायमान' हो गये थे।

"पण्डितजी फिर भी चुप रहे। अब साहब भी अपना क्रोध सवरण न कर सके। वे पण्डितजी की ओर बढे—एक कदम—दो कदम—तीन—अरे अब क्या किया जाय, मालूम नहीं साहब क्या करेंगे, पण्डितजी का हृदय ढेंकी की तरह चलने लगा, ऐसे औघट घाट में कौन सहायता करेगा। भागना भी व्यर्थ होगा, सर्व-शक्तिमान् कलेक्टर से भला कोई भागकर कहाँ जा सकता है ? और फिर भागा कैसे जाय—पृथ्वी की सारी आकर्षण शक्ति तो इस समय पण्डितजी के पदतल का आश्रय ले रही है।

"साहब अब पण्डितजी के बिलकुल निकट आ गये थे। गरुड-गामी को पुकारने के लिये गज को थोडा समय भी मिल गया था, बिचारे पण्डितजी को तो अब वह भी न था, साहब सामने दो हाथ के फासले पर आ गये थे। उनकी मुट्ठी बँधी हुई थी, चेहरा गुस्से से लाल था।

"पण्डितजी से और न देखा गया, और देखने का समय भी न था, अब विलम्ब करने से अनर्थ हो जाता। पण्डितजी ने पलक भाँजते भर में अपना ब्रह्मास्त्र चलाया—अर्थात् अपनी पगडी उतारकर साहब के पैरों पर फेंक दी।

"पगडी उतर जाने से पण्डितजी के खोपडी की बडी अपूर्व झाँकी प्राप्त हुई। ऐसी चिकनी खोपडी थी जैसे नई पिटी हुई गच! घुटी हुई चाँद पर थक्केदार चुटिया शोभा दे रही थी। मानों काबुली सरदा पर थोडे से कसेरू रक्खे हों! यह दृश्य देखकर साहब हँस पडे। हँसी के साथ क्रोध कहाँ टिक सकता है? देखते-देखते साहब के दिमाग़ का टेम्परेचर नार्मल पर आ गया। उन्होंने पण्डितजी की पगडी अपने पैरों पर से उठाकर उनके सर पर रख दी, उन्हें बैठने के लिये कहा, और फिर थोडी देर उनसे इधर उधर की बातें करके उन्हें और रायबहादुर लाला मलूकदास को साथ ही विदा किया।

प० जीट बहादुर शर्म्मा ने क्लब के अध्यक्ष के नाते लाला झाऊलाल को टोककर पूछा—'पर आपको ये बातें मालूम कैसे हुईं? आप तो वहाँ खडे-खडे यह सब देख नहीं रहे थे।'

लाला झाऊलाल ने कहा—' मुझे क्या, सभी को ये बातें मालूम हो गयीं। रायबहादुर लाला मलूकदास और महा-महोपाध्याय पण्डित धर्मध्वज शास्त्री ने आपस में यह सलाह की कि देखो भाई, न तुम मेरी बेइज्जती का हाल किसी से कहना और न मैं तुम्हारी बेइज्जती का हाल किसी से कहूँगा, पर ऐसी दशा मे जो हमेशा होता आया है वही हुआ। बाहर आते ही मलूकदास ने अपने खास दोस्तो को बतलाया कि आज शास्त्रीजी ने इस तरह साहब के पैरों पर अपनी पगडी रख दी। शास्त्रीजी ने भी अपने खास दोस्तों को बतलाया कि आज इस तरह मलूकदास साहब से फटकारे गये। इन खास दोस्तों ने अपने-अपने खास दोस्तों को सारा हाल कह सुनाया—करते-करते कोई भी ऐसा न रह गया जिसके कानो तक ये बातें न पहुँची हों।

"खैर, यह सब तो हुआ, अब जरा आगे का हाल सुनिये। एक बडी मजेदार घटना हुई, जिसके फलस्वरूप मेरे ऐसे निठल्ले को—अर्थात् बेकारी महारोग के एक असाध्य रोगी को—नौकरी मिल गयी। जब एक बार लोगों को यह मालूम हो गया कि साहब अब अपनी साधारण प्रकृति के अनुसार हँस-बोल रहे हैं, तब निःशङ्क होकर लोग उनसे मिलने के लिये जाने लगे। मिलने मे दो मिनट से अधिक समय नहीं लगता था, पर इतने ही देर की interview से लोग निहाल हो जाते थे, मानो चारों धाम करके लौट रहे हों। जिसके

साथ कलेक्टर साहब ने दो मिनट के बदले ढाई मिनट बातें कर लीं वह तो आनन्द-गिरि के मौण्ट एवरेस्ट पर सवार हो जाता था ! किसी कारण से साहब ने प्रसन्न होकर खाँ साहब मौलवी इनायतुल्ला खाँ की दाढी पर हाथ फेर दिया। नतीजा यह हुआ कि खाँ साहब जब बाहर आये तो कुछ अजीब "बाँधे से नँधे से और विमोहित ठिकाने से" दीख पड़े !

"ड्राइङ्ग रूम अभी से सजाया जा रहा है, उसमें आज शाम को साहब के चन्द नर और मादा मित्रों की पार्टी है। अच्छा जमघट रहेगा—गोरों से गोरियाँ मिल बैठेंगी, मोरियाँ बहेंगी शराब की, और चोरियाँ होंगी चुम्बों की, इसी से साहब इस समय बगल के बरामदे में बैठे हुए हैं, और वहीं अपने भक्तों को 'लोचन-लाहु' दे रहे हैं।

"एकाएक उसी बरामदे की ओर कुछ खलबली-सी पैदा हो गयी। साहब खुद घबराये हुए बाहर आ गये और अर्दलियों को इधर-उधर भेजने लगे। एक अर्दली बाइस्किल दौड़ाता हुआ फाटक से निकलकर बाहर जाने लगा। मैंने उससे इस हाबा-डाबा का कारण पूछा। उसने कहा कि डाक्टर को बुलाने जा रहा हूँ, चौधरी बेलनसिंह को एकाएक फालिज मार गया है।

[४]

मुझे और मेवारामजी को यह हाल सुनकर दुःख हुआ, यद्यपि चौधरी बेलनसिंहजी बजात-खुद ऐसे आदमी नहीं हैं

कि उनके दुःख से कोई दुःखी हो। विशाल सम्पत्ति के स्वामी होते हुए भी आप दया-धर्म या लोक-सेवा के नाम पर एक झञ्झी कौड़ी नहीं खर्च करते पर अँगरेजों को भोज देना होता है, तो सेफ-का-सेफ साफ कर डालते हैं। एक मामूली किरण्टे का हमारे चौधरी साहब जितना आदर करते हैं उतना शायद अपने दीक्षा-गुरु का भी न करते होंगे। लोगो का खयाल है कि मरते समय राम के बदले किसी अँगरेज़ का नाम लेकर यं अपना दम तोड़ेंगे। ये उन महानुभावों में से हैं, जिन्होंने किसी समय असहयोग की बाढ़ को अमन सभा के तसलो से उलीचने का सदुद्योग किया था।

"उनकी बुराइयों को जानते हुए भी इस समय उनका हाल सुनकर हम लोगो को अफ़सोस हुआ। अभी तो बेचारे भले चङ्गे थे, बैठे-बिठाये यह क्या हो गया! अर्दली ने उनकी बीमारी का ब्योरा इस प्रकार दिया—बेलनसिंहजी कलक्टर साहब से मिलने गये थे। मिलते समय उन्होंने साहब को प्लैटिनम की एक कीमती टाइ-पिन भेंट की। साहब इस भेंट से इतने प्रसन्न हुए कि उनके दोनों हाथ पकड़कर हिलाने लगे। ठीक इसी समय बेलनसिंह को एक छींक बड़े जोरों की आई, और साहब उनका हाथ पकड़े ही रह गये, पर वे धम-से दरी पर बैठ गये। तब से उसी तरह पलथी मारे बैठे हुए हैं। लाख कोशिशें हो रही हैं उठाने की, पर उठते ही नहीं हैं। इसी से खयाल हो रहा है कि शायद टाँगों में लकवा मार गया है।

"इस घटना से बँगले में आने-जाने की रुकावट कम हो गई थी। लोग चौधरी साहब को देखने के लिये बरामदे की ओर जा रहे थे। मेवारामजी को उधर जाते देखकर मैं भी उनके पीछे हो लिया। बरामदे में जाकर हम लोग कुछ दूरी पर खडे हुए। सामने दरी पर चौधरी बेलनसिंहजी मन-मारे बैठे हुए थे। पास ही साहब खडे-खडे अपना सर खुजला रहे थे। हम लोगों के आगे कुँवर लाडिलीप्रसाद, राय बुलाकीदास इत्यादि कई सज्जन एक कतार में खडे थे, और चौधरी साहब की दशा पर तरस खा रहे थे।

"चौधरी साहब का नाम मैं बहुत सुना करता था, पर यह पहला ही मौका था कि मैंने उन्हें साक्षात् देखा। अजीब गोल-मठोल सी सूरत उनकी है। जितने नाटे हैं, उतने ही मोटे हैं। तोंद शरीफ की ऊँचाई और गोलाई देखने ही से तअल्लुक रखती है। उनके सर और अधोभाग को किसी कपडे से—मसलन कफन से—ढँक दीजिये, तो बाकी शरीर के स्थान मे एक विराट फुटबाल रखा हुआ जान पडेगा। भारत के उज्ज्वल अतीत में जन्म हुआ होता, तो हमारे हिन्दू-सम्राट् उनके पेट के दूहे पर प्रशस्ति लिख मारते। चौधरी साहब नाटी अचकन और ढीला पायजामा पहिने थे। सर पर काले मखमल की कश्तीनुमा टोपी थी।

"मैं चौधरी साहब को कुछ देर तक बडे गौर से देखता रहा। मेरे देखने मे तो वे बिल्कुल स्वस्थ जान पडते थे, कम

से कम यह नहीं प्रकट होता था कि एकाएक उन्हे लकवे का आरजा हो गया है। पर यदि ऐसी कोई बात न होती तो भला वे कलेक्टर साहब के सामने पालथी मारकर बैठे रहते—इतनी बडी बेअदबी करते। जो हो, पर देखने से यह नहीं जाहिर होता था, कि उनको किसी तरह की बीमारी है। हाँ एक बात जरूर थी, उनके चेहरे पर बौखलाहट हद दर्जे की थी, और न जाने क्यों बार-बार अचकन के पल्लों को समेटकर अपनी जाघों और कमर से चिपका रहे थे।

"इतने मे डाक्टर भी आ गया। उसने आगे पीछे से भली भाँति उनको निहारा—नब्ज देखी—आँखो के कोए देखे—छाती को थपथपाया—और सबको 'ठीकमठीक' पाया। उसने टाँगों को देखना चाहा, पर चौधरी साहब ने कतई इनकार कर दिया कि मैं अपनी टाँग न दिखाऊँगा, साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि आपका यह ख्याल कि मेरी टाँगों मे लकवा मार गया है, बिलकुल गलत है।

"आखिर माजरा क्या है! चौधरी साहब खुद ही तसलीम करते हैं कि मेरी टाँगें ठीक हैं पर तब भी दरी पर जमकर बैठे हुए हैं। अगर पैरों में कुछ हुआ नहीं है तो एकाएक बैठ क्यों गये थे और अब उठते क्यों नहीं हैं? डाक्टर ने कहा कि आपकी टाँगें ठीक हैं तो आप खडे क्यों नहीं हो जाते, यह कहाँ की तहजीब है कि कलेक्टर साहब के सामने

आप आसन जमाये बैठे हैं ? चौधरी साहब ने सिवा सर झुका लेने के इसका कोई उत्तर न दिया ।

"डाक्टर ने यह सलाह दी कि कुछ लोग चौधरी साहब को उनकी मरजी के खिलाफ उठाकर खड़ा कर दें, पर चौधरी साहब इस प्रस्ताव से बड़े घबड़ाये, और उन्होंने स्पष्ट शब्दों में सबको जता दिया कि यदि कोई मुझे अपनी जगह से हटाने की कोशिश करेगा तो उसे मैं बिना मारे न छोड़ूँगा ।

"कलेक्टर साहब बड़ी परेशानी में पड़ गये । वास्तव में एक विचित्र परिस्थिति उत्पन्न हो गई थी । शहर के एक धनी-मानी सज्जन उनके बँगले के बरामदे में बिना किसी सूचना या चेतावनी के अकस्मात् और अकारण पलथी मार-कर बैठ जाते हैं, खुद उठने का नाम नहीं लेते, लोग हाथ पकड़कर उठाना चाहते हैं तो उन्हें मारने की धमकी देते हैं । कलेक्टर साहब ने भी उनसे उठने के लिये कहा, पर नतीजा कुछ नहीं हुआ । चौधरी साहब अपने स्थान से हिले तक नहीं ।

"अन्त में सब लोगों ने एक मत से यह राय कायम की—जिससे डाक्टर भी सहमत हुआ—कि हो-न हो उनके दिमाग का कोई पेंच ढीला हो गया है जिसकी वजह से वे साहब के सामने भी दुराग्रह और ढिठाई पर कमर कसे हुए हैं, और अब सिवा इसके कोई चारा नहीं है कि उन्हें बलात् उठाकर मोटर पर सवार कराया जाय, और घर पहुँचा दिया जाय ।

"यह कह देना तो आसान था कि चौधरी साहब को उठाकर मोटर पर सवार करा दिया जाय, पर ऐसा कर दिखाना साधारण काम न था। उनके शरीर की रचना मे विधाता ने तेल पेरने के कोल्हू को आदर्श माना है। तौल में किसी मझुनी हाथी से वे कम नहीं हैं। ऐसे 'भारी भरखम' मनुष्य को उठाकर मोटर मे बैठा देना कारेदारद था। चार पेशराज लगते तो चौधरी साहब को कहीं टस-से-मस कर सकते।

"पर चौधरी साहब ऐसे प्रतिष्ठित रईस को पेशराजों से उठवाना कलेक्टर साहब ठीक नहीं समझते थे। नौकरो और अर्दलियों के सम्बन्ध में भी यही आपत्ति थी। बेलनसिंहजी कूड़ा तो थे नहीं कि नौकरों से कहते कि बुहारकर फेंक दो। तब आखिर उन्हें कौन उठावेगा? क्या क्रेन मँगाने की जरूरत पड़ेगी।

"साहब की इस परेशानी का इलाज कुँवर लाडिलीप्रसाद ने ढूँढ निकाला। उन्होंने बाबू मेवाराम-सरीखे नौजवान रईसों में से कुछ Volunteers माँगे। एहसान तो साहब के ऊपर होता, इसलिये फौरन कुछ लोग तैयार हो गये। मेवाराम ने मुझे भी बेगार में पकड़ लिया। चौधरी साहब मारने की धमकी देते ही रहे पर हम लोगों ने हिम्मत करके उनके हाथ पाँव पकड़ लिये।

"मैं सबसे तगड़ा था, इसलिये मुझे उनके शरीर के सबसे भारी हिस्से को, अर्थात् कमर और पेट को, पकड़ने के लिये

कहा गया। मैंने कमर उनकी पकड तो ली, पर मेरे ऐसा करते ही वे इस कदर बिगडे कि उन्होंने पूरी ताकत लगाकर लोगों से अपना एक हाथ छुडा ही लिया, और मुझे मारने के लिये "कुलिश समान मुष्टि सन्धाना"। जिस प्रकार बाज लवा पर टूटता है उसी प्रकार उनका हाथ मेरे सर पर टूटने के लिये उठा। मैंने हाथ को उठते हुए देखा और उसके वेग से समझ गया कि अगर यह मेरे सर पर बैठ जायगा तो मैं पटरा हो जाऊँगा, पर कमर छोडकर भागने की जगह भी न थी—लोग पीछे से इस तरह घेरकर खडे हो गये थे कि एक इञ्च भी टलना असम्भव था। एक क्षण के लिये तो मैं किंकर्त्तव्यविमूढ हो गया, पर फौरन ही अपने को सँभालकर आत्मरक्षा के एक मात्र उपाय का—जो उस समय की घबराहट में मुझे सूझ पडा—अनुसरण किया। बडी फुर्ती से मैं नीचे झुका, और चौधरी साहब की अचकन से अपना सर ढँककर जमीन से चिपक रहा। दूसरे ही क्षण चौधरी साहब का वार खाली गया और जब तक वे दूसरा वार करें तब तक लोगों ने फिर उनका हाथ पकड लिया।

"पहले मेरा यह ख्याल हुआ कि अजनबी समझकर चौधरी साहब मुझे मारने की कुचेष्टा कर रहे थे, पर नहीं यह बात नहीं थी। यहाँ तो मामला ही दूसरा था, इस समय जो कोई चौधरी साहब की कमर छूने का साहस करता उसी के सर की कुन्दी हो जाती।

"मुशकिल से पाँच सेकेण्ड मैंने चौधरी साहब के अचकन का आश्रय लिया होगा, पर इतनी ही देर मे मैंने उसके नीचे जो कुछ देखा, उससे मेरी आँखें खुल गयीं। चौधरी साहब के यकायक पालथी मारकर बैठ जाने का और उठने से इनकार करने का सारा रहस्य खुल गया। चौधरी साहब की व्याधि (!) के सम्बन्ध मे मैंने अनायास जो विशेषज्ञता प्राप्त कर ली, वह बिना उनकी अचकन के नीचे झाँके कोई भी नहीं प्राप्त कर सकता था।

"मैं अभी तक डर रहा था कि मैं न तीन में हूँ न तेरह में, कहीं कोई अर्दली कान पकडकर बँगले के बाहर न कर दे, पर अब मैं निडर हो गया। निधडक साहब के पास जाकर बोला—'बेलनसिंहजी को उठाकर मोटर पर लादने की जरूरत नहीं है। आपकी आज्ञा हो तो मैं उन्हे योंही खडा कर दूँ।' साहब को मेरे कहने पर विश्वास तो न आया, पर उन्होंने एक बार मुझे प्रयत्न करके देख लेने की अनुमति दे दी। मैंने उनसे कहा—'यहाँ पर और जो सज्जन खडे हैं, उनसे कहिये कि कृपा करके थोडी देर के लिये बाहर पोर्टिको में चले जायँ, और आप भी उतनी ही देर के लिये चौधरी साहब की ओर पीठ करके खडे हो जाइये।'

"ऐसा ही हुआ, लोग पोर्टिको मे चले गये और साहब पीठ फेर कर खडे हो गये। यह सब हो जाने पर मैं चौधरी साहब के पास गया, और उनसे बोला—'अब आप खड़े हो

जाइये। इस समय आपको कोई नहीं देख रहा है। मेरे कन्धों पर हाथ रखकर धीरे-धीरे खड़े हूजिये। मैं पायजामा ऊपर खसकाता चलूँगा।' चौधरी साहब ने समझदारी खर्च की। मेरी सलाह मानकर खड़े हो गये, मैंने पायजामा ऊपर खींचकर इज़ारबन्द कस दिया।

"बेलनसिंह को खड़े देखकर साहब के विस्मय का कोई ठिकाना न रहा। मुझे उन्होंने कोई जादूगर समझा। मेरा हाथ पकड़कर ड्राइङ्गरूम में लिवा गये। बड़े आदर से मुझे कुर्सी पर बिठाया और अँगरेजी में बात-चीत करने लगे। पहले उन्होंने यह जानना चाहा कि चौधरी साहब को यकायक क्या सूझी थी कि वे दरी पर पालथी मारकर बैठ गये थे।

[५]

"मैं सारा भेद कह ले गया। घटनाक्रम पर ध्यान दीजिये, तो आप लोग भी सारा भेद समझ जायँगे। बेलनसिंहजी ने कलेक्टर साहब को प्लैटिनम की एक कीमती टाईपिन भेंट की। साहब ने इस X'mas Present से सन्तुष्ट होकर उनके दोनों हाथ पकड़ लिये। ठीक इसी समय चौधरी साहब को धड़ल्ले की छींक आई। छींक से पेट पर जोर जो पड़ा, तो पायजामे का इजारबन्द—जो असावधानी से ढीला बँधा हुआ था—खुल गया। पायजामा अब नीचे खसक चला। उधर दोनों हाथ साहब पकड़े हुए थे। उनसे झटकारकर

हाथ छुडा लेना अक्षम्य अपराध होता; पर निगोडा पायजा
यह सब एक नहीं समझता था। उसने नीचे सरकना जा
रक्खा, और सरकते-सरकते घुटनों तक पहुँच गया। अ
बिचारे चौधरी साहब करते तो क्या करते? मोटे
दर्जे के थे। अब हाथ छुडाना भी व्यर्थ था, क्योंकि पखा
ऐसे पेट के मारे हाथ कभी घुटनो तक पहुँच भी न पाते थे
सिवा इसके और कोई उपाय न था कि वे जमीन पर बै
जायँ, और अचकन से जो कुछ छिप सके, छिपा ले। चौध
साहब ने यही किया भी। अब अगर लोगों के आग्रह कर
पर भी नहीं खडे होते थे, और जबरदस्ती खडा करानेवाले
को मारने की धमकी देते थे, तो बिचारे का क्या कसूर था
सबके सामने—खासकर साहब के सामने—खडे होकर अपन
असली हालत का विज्ञापन देते?

"हँसते-हँसते साहब का बुरा हाल हो गया। हँस
रोकते हुए उन्होंने मुझसे पूछा—'तुम्हारा नाम क्या है?'

'मेरा नाम है झाऊलाल'

'तुम करते क्या हो?'

'सोचा करता हूँ कि क्या करूँ।'

'कोई नौकरी क्यों नहीं करते?'

'नौकरी तलाश करने के लिये एक नौकर कहाँ से लाऊँ?

'कैसी नौकरी चाहते हो?'

'कोई भी नौकरी हो, पर हाँ तनख्वाह अच्छी हो, और काम कुछ न हो ?'

"साहब हँसे, शायद यह सोचकर कि ऐसी नौकरी पाने के लिये तो सिविल सर्विस की परीक्षा पास करना होता है, फिर कुछ सोचकर बोले—'अच्छा, मैं ऐसी नौकरी दिला दूँ तो कर लोगे ?'

"साहब भी अजीब आदमी हैं। पूछते हैं कि मैं ऐसी नौकरी कर लूँगा ? अभी तक मैंने अपनी जीवन-नौका को संसार-सागर में हवा के हर एक झकोरे के साथ क्यों बहने दिया था ? सिर्फ इसलिये कि मैं अपना व्यक्तित्व नहीं खोना चाहता था। बेकारी का मेरे व्यक्तित्व से अङ्ग-अङ्गी का सम्बन्ध है। मैं ऐसी नौकरी चाहता था, जिसके साथ बेकारी की सगाई आसानी से निभ सके। मैं साहब के प्रश्न का उत्तर न दे सका, पर वे मेरे हृदय की बात समझ गये। मुझे साथ लेकर बाहर बरामदे में आये।

"चौधरी बेलनसिंहजी अभी साहब से विदा नहीं माँग सके थे। इसलिये बरामदे में एक कुर्सी पर बैठे हुए उनके आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। उनको देखकर फौरन Yours Most Obediently की मुद्रा से खड़े हो गये। साहब ने उनसे अँगरेजी में पूछा—'वेल मिस्टर चौधरी ! आज की घटना से क्या साबित हुआ ?'

"चौधरी साहब इसका क्या उत्तर देते ? उनकी समझ में तो—गो उन्होंने कुछ कहा नहीं—आज की घटना से सि यही साबित होता था कि इजारबन्द पायजामे की जान है और बिला उसकी पूरी मदद पाये पायजामा महज अपनी जा से शरीर की लज्जा ढाँक रखने मे समर्थ नहीं हो सकता।

"उन्हें चुप देखकर साहब ने कहा—'सुनिये, आज क घटना से यह साबित हुआ कि आपको अक्ल के सिवा औ एक चीज़ की कमी है, समझे आप ?'

'जी हुज़ूर। आपने फर्माया है कि अक्ल के सिवा मु और एक चीज की कमी है।'

वह एक चीज क्या है ?—एक प्राइवेट सेक्रेटरी। आपको एक प्राइवेट सेक्रेटरी की कमी है। समझे आप ?'

'जी हुज़ूर। आप ने फर्माया कि मुझे एक प्राइवेट सेक्रे टरी की कमी है।'

'आपकी इजाजत हो तो मैं इस कमी को पूरा क सकता हूँ।'

'हुज़ूर ऐसा क्यों कहते हैं ? मैं आपको इजाजत दूँगा हुज़ूर मालिक हैं, जो मुनासिब समझिये, कीजिये।'

'तो यह देखिये, आपके सामने लाला भाऊलाल खड़े हैं। बड़े योग्य और अनुभवी आदमी हैं। इनको मैं आज से आपका प्राइवेट सेक्रेटरी नियुक्त करता हूँ। ये आपसे डेढ़ सौ रुपये मासिक लेंगे। मेरे बहुत कहने से ये इतने कम

पर राजी हुए हैं। इनका खास काम होगा आपके इजारबन्द का सदा खयाल रखना, जिसमे आज ऐसी घटना फिर कभी न हो। साथ ही, यह दो काम और करेंगे—आपका गुण-गान और आपके घर की शोभावृद्धि। इससे अधिक काम आप इनसे न लीजियेगा।'

"मेरी इच्छा हुई कि साहब का चरणोदक ले लूँ, हर्षातिरेक से मैं उन्हें धन्यवाद भी न दे सका। मन ही मन मैंने दोआ माँगी कि साहब 'जुल-जुल' अवस्था तक जिएँ। सारांश यह कि मुझे नौकरी मिल गयी। चौधरी बेलनसिंहजी यद्यपि यह बराबर सोचते रहे कि साहब उनकी दुम में प्राइवेट सेक्रेटरी-रूपी पलीता क्यो लगा रहे हैं, पर तब भी उनके ऐसे राजभक्ति के कीडे में—जी-हुजूरी जन्तु में—इतनी हिम्मत कहाँ कि एक अँगरेज—और अँगरेज भी कैसा कि कलेक्टर—की बात टाल सके। मैं अब चौधरी साहब का प्राइवेट सेक्रेटरी हूँ—और रहूँगा—जब तक कि कोई दूसरा कलेक्टर बदलकर यहाँ नहीं आता। तब तक तो अपने राम मूसर से ढोल बजायेंगे, फिर आगे देखा जायगा।"

लाला झाऊलालजी ने इस प्रकार अपना वक्तव्य समाप्त किया। सारे क्लब ने उनको एक स्वर से बधाई दी। प० जोट बहादुर शर्मा ने कहा—"सज्जनो! लाला झाऊलाल ने स्वय नौकरी तलाश करने की कोशिश नहीं की, और उनकी नौकरी बेकारी से बहुत कुछ मिलती-जुलती हुई है, इसलिये

मेरा प्रस्ताव है कि अब उन्हें सदस्य बने रहने की अनुमति प्रदान करे।"

इसके कहने की आवश्यकता नहीं है कि प्रस्ताव सर्व-सम्मति से स्वीकृत हुआ। लाला मल्लूमल ने चलते-चलाते कहा—"ईश्वर भी बड़ा दिल्लगीबाज है। अभी तक छप्पर फाड़कर धन दिया करता था, अब इजारबन्द खोलकर नौकरी देने लगा ?"

श्री अन्नपूर्णानन्द

की दूसरी रचना

पं० बिलवासी मिश्र

शीघ्र ही प्रकाशित होगी

साथ ही

हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध हास्य-रस-लेखक

श्री "बेढब"

की 'कालिज के दिन'-शीर्षक अत्यन्त रोचक, मजेदार पुस्तक छप रही है। ।।) भेजकर शीघ्र ही हमारी "सीताग्रन्थ-माला" के ग्राहक बनिये। सभी पुस्तकें पौने मूल्य में मिलेंगी।